5506

संस्कृत-काव्यों में पर्यावरण का दैव स्वरूप

डॉ० सञ्जय कुमार

संस्कृत-काव्यों में पर्यावरण के दैव स्वरूप

लेखक

डॉ० सञ्जयकुमार

प्रकाशक

सुरुचि कला प्रकाशन

वाराणसी

लेखक

डॉ० सञ्जयकुमार

ISBN : 978-81-909037-8-3

प्रथम संस्करण : 2010

मूल्य : रु० 250

© लेखक

मुद्रण : तिवारी प्रिंटिंग प्रेस, वाराणसी
Mob. : 9451439690

प्रकाशन
सुरुचि कला प्रकाशन
बी. 23/45, घ-ए-एस, नई बाजार, खोजवाँ, वाराणसी
मो. नं. . 0542-2310854, 09450016201

निर्वाण तिथि, 31 मार्च, 2008

आर्ष संस्कृति के प्रतीक एवं पर्यावरण
चेतना के प्रेरणा स्रोत पूज्य पितामह

स्वर्गीय श्री सुमेर सिंह यादव

के स्मृति में

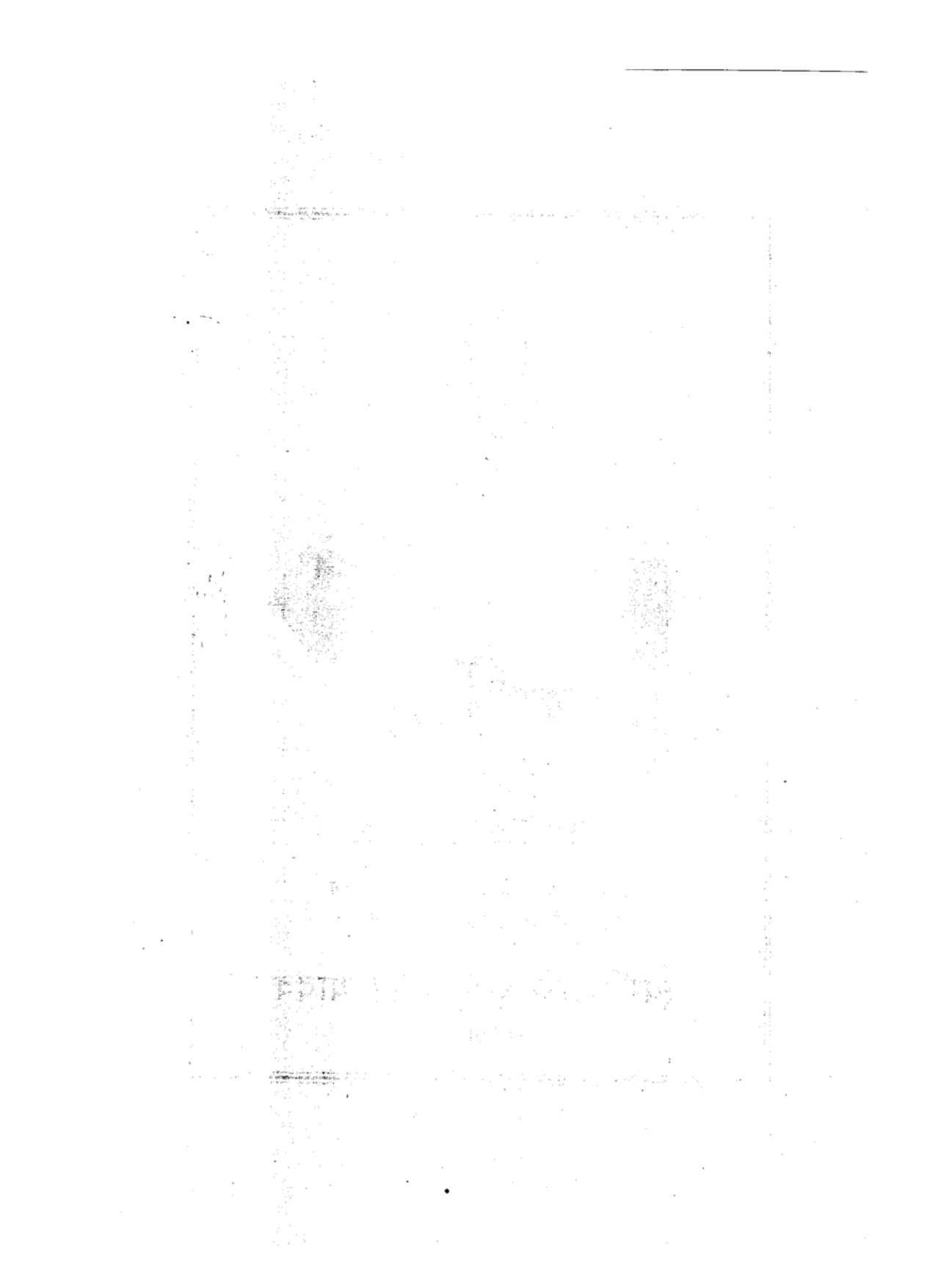

प्रो. मानसिंह
समवाप्तराष्ट्रपतिसम्मान
आचार्य एवम् अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
संस्कृत-पालि तथा प्राकृत विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

पूर्व निदेशक
संस्कृत तथा प्राच्यविद्या संशोधन
संस्थान, महर्षि दयानन्द वैदिक संशोधन
संस्थान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
दूरभाष न.- 01332264903

पुरोवाक्

भारतीय चिन्तनों ने पृथिवी, जल (आपः), अग्नि (तेजस्) तथा वायु को देवरूप माना है। ये ही प्राणि-जगत् के आकाश सहित मूल घटक हैं, अतः इन्हें देवरूप स्वीकार करना सर्वथा समीचीन है। इनके अभाव में समस्त प्राणी-जगत् के जीवन की कथमपि कल्पना नहीं की जा सकती। पर्यावरण के भी ये ही मुख्य घटक हैं। इन्हें अहिंसित, शुद्ध एवं अप्रदूषित रखने में ही प्राणिमात्र का कल्याण है और इनकी हिंसा किं वा प्रदूषण में मृत्यु को निमन्त्रण। इन्हें प्रदूषित कर मानव ने अपने अस्तित्व एवं जीवन के लिए विकट समस्या को आमन्त्रित किया है। परिणामतः आज पर्यावरण-प्रदूषण एक भयावह समस्या बन गई है, जिसका अविलम्ब समाधान अनिवार्य है। प्रिय डॉ० सञ्जय कुमार ने अपने *''संस्कृत-काव्यों में पर्यावरण का दैव स्वरूप''* शीर्षक ग्रन्थ में संस्कृत काव्यों के आलोक में इन उपर्युक्त देवों के प्राणिमात्र के जीवन के प्रति विशिष्ट अवदान का संकेत करते हुए उनसे सम्बद्ध पर्यावरण के संरक्षण सम्बन्धी विवरणों की मीमांसा और संस्कृत-कवियों की एतद् विषयिणी चिन्तन का विमर्श प्रस्तुत किया है। उपर्युक्त देवों अर्थात् दिव्य तत्त्वों (भूतों) से सम्बद्ध होने के कारण पर्यावरण का यह दैव रूप है। वनस्पति तथा पशु-पक्षियों की सत्ता एवं जीवन भी इन्हीं तत्त्वों पर आश्रित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ षडध्यायात्मक है, जिसके प्रारम्भ में भूमिका और अन्त में उपसंहार दिए गए हैं। प्रथम अध्याय में वैदिक काव्यों (मन्त्र-संहिताओं) में निरुपित दैव पर्यावरण की विवेचना की गई है। द्वितीय अध्याय का विषय आर्षकाव्य (रामायण, महाभारत और पुराण) हैं। तृतीय अध्याय के रूप में प्रमुख गद्यकाव्य हैं। चतुर्थ अध्याय में पद्यकाव्यों के अन्तर्गत प्रमुख संस्कृत-महाकाव्यों, गीतिकाव्यों एवं

खण्डकाव्यों में निरूपित दैव पर्यावरणीय तत्त्वों की मीमांसा की गई है। पंचम अध्याय में चम्पूकाव्यों को और षष्ठ अध्याय में संस्कृत रूपकों को विवेचन का विषय बनाया गया है। भारतीय चिन्तन परम्परा उपर्युक्त दैव (दिव्य तत्त्वों) के अतिरिक्त वनस्पतियों तथा पशु-पक्षियों में भी देवत्व का दर्शन करती है। इस प्रकार दैवरूप चिन्तन के ब्याज से सुधी लेखक ने संस्कृत काव्यों के परिप्रेक्ष्य में संस्कृत-कवियों के पर्यावरण विषयक चिन्तन को प्रकाशित किया है। अतः यह एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय प्रयास है।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि संस्कृत-काव्यों के आलोक में पर्यावरण-चिन्तन में व्याप्त प्रत्येक पाठक इस प्रयास का अभिनन्दन करेगा। लेखक हार्दिक साधुवाद का पात्र है। परमेश्वर उनकी सरस्वती-सपर्या को अविचल, निरन्तर तथा सफल बनाए रखें।

रुड़की (हरिद्वार, उत्तराखण्ड)
दिनांक : अक्टूबर 09, 2010

विद्वच्चरणचंचरीक.
मानसिंह

आत्म-निवेदन

आज सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण की समस्या से पीड़ित है। चारों तरफ इस समस्या से जूझते हुए लोगों का जीवन भयाक्रान्त सा बन गया है। विश्व के वैज्ञानिक इस समस्या के निदान एवं उपचार के लिए अनुसंधानरत हैं। उनके अनुसंधानों का निष्कर्ष है कि प्रकृति की सुरक्षा करके ही पर्यावरण को सुरक्षित एवं संरक्षित किया जा सकता है। प्रकृति ही पर्यावरण को दिव्यता प्रदान करने वाली वह अमृतमणि है, जिससे पर्यावरण निर्मित एवं पुष्ट होता है। पुष्ट पर्यावरण ही प्राणिमात्र का अभिभावक है। इसी भावना से भावित होकर हमारे प्राचीन मनीषियों ने प्रकृति का अभिवन्दन किया है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश के समूह को प्रकृति कहा जाता है। यह प्रकृति ही प्राणिमात्र की जीवनदात्री है। इस धराधाम पर सभी जीवों का नवल विकास इसी के अङ्क में होता है। इसी से सभी जीवन धारण किये हुए हैं। प्रकृति की चेतनता से ही सम्पूर्ण विश्व सचेतन है। प्रकृति के दिव्य शक्ति सम्पन्न होने के कारण ही संस्कृत काव्यों में इसकी स्तुति की गयी है। प्रकृति ही पर्यावरण का व्यक्तरूप है। संस्कृत काव्यों में प्राकृतिक घटकों को दैवभावना से मण्डित करने का यही अभिप्राय रहा है कि मानव-मन इनके प्रति श्रद्धावनत होकर इनका सम्मान करें।

प्रकृति में दैवत्व की भावना किये विना पर्यावरण-संरक्षण की कल्पना नहीं की जा सकती है। प्रकृति के दैव स्वरूप का वरण करना धर्माचरण है। धर्मचरण से चित्त निर्मल होता है, निर्मल चित्त ही आत्मसाक्षात्कार का भाजन होता है। प्रकृति के साथ धार्मिक भावना स्थापित करने से मानव हृदय में आस्था का अंकुरण हो जाता है। इसी अंकुरण से स्वस्थ पर्यावरण का विशाल वट वृक्ष पुष्पित एवं पल्लवित होता है। इसी अर्थ में प्रकृति पूजनीया एवं वन्दनीया हो जाती है। इसका हर घटक ही शिवस्वरूप है। सभी घटकों से ही हमारा जीवन संवलित होता है। हमारे परितः प्रकृति ही तो है। परि + आवरण = पर्यावरण शब्द की अन्वर्थता भी

महनीय कार्य के प्रति मैं लेखक को शुभ आशीष देते हुए ईश्वर से मङ्गल कामना करता हूँ कि इसी तरह निरन्तर पुनीत कार्यों में संलग्न रहते हुए प्रगति पथ पर अग्रसर रहें।

Bhoi
(Prof. S. Bhoi)

प्रो० शुकदेव भोइ
प्रमुख : साहित्य एवं संस्कृति संकाय
श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय
संस्कृत-विद्यापीठ, नई दिल्ली

दिनांक : 05.09.2010

इस ग्रन्थ की सम्पूर्ति के लिए छः अध्यायों का सृजन किया गया है। प्रारम्भ में विषय की प्रस्थापना हेतु भूमिका अनुस्यूत है। अनन्तर वैदिक संहिताओं को आधार बनाकर पर्यावरण के दैव तत्त्वों की मीमांसा प्रस्तुत की गयी है। इसी प्रकार क्रमशः द्वितीय अध्याय - आर्ष काव्य, तृतीय अध्याय - गद्यकाव्य, चतुर्थ अध्याय - पद्यकाव्य, पंचम् अध्याय - चम्पू काव्य और षष्ठ अध्याय रूपकों को आधार बनाकर संस्कृत काव्यों में सम्प्राप्त पर्यावरणीय दैव तत्त्वों को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। अन्त में सम्पूर्ण गवेषणा का सार स्वरूप उपसंहार निबद्ध है।

पर्यावरण हमारे लिए अति महत्त्वपूर्ण विषय है। उसमें भी पर्यावरण के दैव स्वरूप का अनुसंधान करना और भी महत्त्वपूर्ण एवं दुरूह कार्य है। अतः इस कठिन कार्य की सम्पूर्ति में ईश्वर ही परोक्ष या अपरोक्ष रूप से दृष्टि प्रदान करने वाले रहे हैं। मैं उनकी चरणों में कोटिशः प्रणाम करता हूँ। पुरोवाक् से इस ग्रन्थ को विभूषित करने वाले प्रो० मानसिंह एवं शुभाशंसा की सृष्टि करने वाले प्रो० शुकदेव भोइ का विशेष आभारी हूँ। इन दोनों आचार्यों द्वारा मुझे सदैव शोध गुत्थियों को सुलझाने में सहायता प्राप्त होती रही है।

इस ग्रन्थ की सम्पूर्ति में विशेष योगदान देने वाले प्रो० पर्णदत्त सिंह, डॉ० शिवशंकर सिंह यादव एवं डॉ० अमलधारी सिंह मूर्तित्रय की भाँति मेरा उत्साहवर्धन करते रहे हैं। जिन सुधी विद्वानों से हमे सदैव प्रेरणा और आशीर्वाद प्राप्त होता रहा वे हैं - प्रो० श्रीकिशोर मिश्र, प्रो० मनुलता शर्मा, प्रो० आनन्द कुमार श्रीवास्तव, प्रो० उमेश प्रताप सिंह, प्रो० केदार नाथ सिंह यादव, प्रो० लालजी श्रावक, डॉ० झिनकू यादव एवं डॉ० गोपाल लाल मीणा। इन्हीं आचार्यों से प्रेरणा प्राप्त कर मन में कुछ लिखने की पिपासा जगी, उसी की तृप्ति की दिशा में किया गया यह लघु प्रयास है।

इस ग्रन्थ के मांगलिक समापन के अवसर पर पूज्य पिता श्री शंकर सिंह यादव, पूजनीया ममता स्वरूपा माता श्रीमती सुदामी सिंह यादव, पितृव्य डॉ० महेश सिंह यादव, श्री रमेश सिंह यादव, अग्रज श्री हीरालाल सिंह यादव, श्री हरिकेश सिंह यादव का निरन्तर सहयोग व प्रोत्साहन तथा सहानुभूति प्राप्त होती रही है। आप लोगों का स्नेहसिक्त आशीर्वाद ही मेरा पाथेय बना।

तो यही है। प्रकृति प्राणिमात्र को जीवन के साथ-साथ जीवनोपयोगी भौतिक संसाधानों का उपहार प्रदान करती रहती है। फिर भी हम उसके स्वरूप को नष्ट-भ्रष्ट करने में लगे हुए हैं। ऋषि प्रकृति के संरक्षण के लिए सदैव सचेत रहा है। वेद, उपनिषद्, पुराण, साहित्य सबमें प्रकृति के संरक्षण का सन्देश समाहित है। यदि पर्यावरण हमारे जीवन का संरक्षक है तो प्रकृति पर्यावरण की संरक्षिका है। इसलिए प्रकृति की सुरक्षा द्वारा ही पर्यावरण को सुरक्षित किया जा सकता है। पर्यावरण से पूर्णतः उपकृत होकर हम उसके दैवस्वरूप के प्रति विनयावनत हैं। उपकारक के प्रति कृतज्ञता भाव रखना हमारी सांस्कृतिक परम्परा रही है।

पर्यावरण और प्राणिमात्र का सम्बन्ध शरीर और आत्मा की भाँति है। जिस प्रकार आत्मा रहित शरीर मृतप्राय होती है, उसी प्रकार पर्यावरण के बिना प्राणी प्राण रहित है। प्रकृति, पर्यावरण और प्राण सभी एक दूसरे के पूरक हैं। एक के विना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है। हमारी आर्षसंस्कृति इसी के अङ्क विकसित हुई है। प्रकृति सनातन है, यह त्यागपूर्वक जीवन जीने का हमें सतत् सन्देश देती है। त्यागपूर्वक भोग ही जीवन का रहस्य है। जिस प्रकार स्तनपान करने पर शिशु और माँ दोनों स्वस्थ रहते हैं, उसी प्रकार प्रकृति के सदुपयोग से हम और हमारा पर्यावरण दोनों संरक्षित रहेगा। इसीलिए संस्कृत-काव्य परम्परा में सम्पूर्ण प्रकृति को दैव शब्द से विभूषित किया गया है। पंचभौतिक तत्त्वों सहित वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी सभी में ईश्वर भाव का दर्शन किया जाता है। ये सभी हमारे परम् प्रिय प्रभु हैं क्यों कि उनसे हम पोषित हैं।

भूमण्डल पर पुष्ट पर्यावरण के लिए सर्वत्र प्रार्थना की गयी है। प्रार्थना उसी की होती है जो परम उपकारी हो। हम सर्वविध अपने उपकार की कामना से प्रकृति की सदैव स्तुति करते हैं। प्रकृति जब सर्वदा शक्ति से परिपूर्ण रहेगी तभी हमारे जीवन में प्रसाद की वर्षा करेगी, इसी महनीयता के बोध लिए प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण विषय की स्थापना की गयी है। जब तक पर्यावरण के प्रति इस तरह की उदात्त भावना नहीं बनेगी, तब तक पर्यावरण जनित समस्याओं का पूर्णतः समाधान नहीं हो सकेगा। अतः पर्यावरण के दैवी स्वरूप को अङ्गीकार कर आवश्यकतानुसार उपभोग ही हमारे जीवन के लिए श्रेयस्कर है।

भूमिका

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के समष्टि का नाम पर्यावरण है। यह हमारे जीवन का अभिन्न अङ्ग है। हम अपने जीवन का कोई भी क्षण पर्यावरण से विरहित होकर नहीं व्यतीत करते हैं। पर्यावरण से ही हम सर्वतोभावेन सदैव पोषित होते हैं। यह हमे रहने के लिए आवास, खाने के लिए अन्न, पीने के लिए जल, श्वाँस लेने के लिए वायु, पहनने के लिए वस्त्र और शरीर को पुष्ट बनाने के लिए ताप देता है। मनुष्य इन्हीं पञ्चभौतिक तत्त्वों का साकार स्वरूप है। पर्यावरण हमे सब कुछ देता है जिससे हमारा जीवन परिवर्धित होता है लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि बदले में हमसे कुछ अपेक्षा नहीं रखता। संसार के सभी सम्बन्ध आदान-प्रदान पर अवलम्बित हैं लेकिन पर्यावरण का सम्बन्ध ऐसा है जो केवल प्रदान करके सम्बन्ध को स्थायित्व करता है। वह हमे हर क्षण देता है। जो देता है वही देव है - 'यो ददाति सा देवता'। ईश्वर मनुष्य को अपने स्वभाव वश देता है। उसके मन में लोकमङ्गल की प्रबल भावना सदैव व्याप्त रहती है। आचार्य भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है -

'पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थिता जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहिते विहिताभियोगाः'।। (नीतिशतक, 74)

अर्थात् बिना प्रार्थना किये ही सूर्य कमल के समूह को विकसित करता है। चन्द्रमा कैरवों के समूह को प्रफुल्लित करता है तथा मेघ प्राणियों को जल देता है। सज्जन लोग अपने आप ही दूसरों की भलाई में लगे रहते हैं। पर्यावरण भी मनुष्य का स्वतः कल्याण करता है। पर्यावरण का स्वभाव ही ऐसा है कि वह दूसरों के भलाई में लगा रहता है। उसके अन्दर न किसी के प्रति राग है और न द्वेष। वह सदैव निरपेक्ष भाव से रहते हुए लोक-कल्याण में संलग्न रहता है। वह हमसे किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं रखता है लेकिन हमे त्यागपूर्वक रहते हुए कर्त्तव्य पालन की प्रेरणा अवश्य देता है।

सुरुचि कला प्रकाशन, वाराणसी के संचालक अंजनी कुमार मिश्र जी का विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने की संस्तुति प्रदान कर मुझे निश्चिन्त कर दिया।

इस ग्रन्थ के परिप्रेक्ष्य में मैं कहना चाहूँगा कि अल्पज्ञता, दृष्टिदोष, पूर्वाग्रह तथा कतिपय कारणों से इस विषय की मीमांसा में अनेक दोष रह गये होंगे, जिसे सुधी विद्वान् मुझे क्षमा करते हुए इसका अवगाहन करेंगे।

दिनांक 30.08.2010

विद्वत्चरणानुरागी

सञ्जयकुमार

उसका आध्यात्मिक स्वरूप हो। सभी एक दूसरे पर अवलम्बित हैं। समस्त पर्वत, पठार, नदी, जलाशय, सागर, वनस्पतियाँ, पशु-पक्षियाँ इत्यादि दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थ पर्यावरण का भौतिक स्वरूप हैं। इनमें व्याप्त जीवनदायिनी अधिष्ठात्री शक्ति ही इनका आधिदैविक स्वरूप है। एक ही सत् स्वरूप परमात्मा विविध रूप धारण किया हुआ है। ये सभी आत्मस्वरूप हैं, जिन्हें पर्यावरण का आध्यात्मिक स्वरूप कहा जाता है। क्रमशः ये सभी एक दूसरे से अनुस्यूत होते हुए भी सूक्ष्मतर हैं। इस अर्थ में भारतीय मनीषा सदा से पर्यावरण के प्रति महत्त्वबुद्धि रख कर 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' एवं 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' की भावना को साकार करती हुई आयी है।

सम्पूर्ण वैदिक काव्य एवं लौकिक काव्य में पर्यावरण के प्रति दैवी भाव परिलक्षित होता है। सभी परम् हितैषी हैं। द्युलोक, अन्तरिक्षलोक एवं भूलोक सबकी शान्ति के लिए प्रार्थना की गयी है -

'द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म
शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि'।

(यजुर्वेद, 37/17)

अर्थात् स्वर्गलोक, अन्तरिक्षलोक तथा पृथ्वीलोक हमें शान्ति प्रदान करें। जल शान्ति प्रदायक हों, औषधियाँ ,तथा वनस्पतियाँ शान्ति प्रदान करने वाली हों। सभी देवगण शान्ति प्रदान करें। सर्वव्यापी परमात्मा सम्पूर्ण जगत् में शान्ति स्थापित करे। शान्ति भी हमे परम् शान्ति प्रदान करे। प्रस्तुत मन्त्र में शान्ति का अभिप्राय मङ्गल कामना है। सम्पूर्ण सृष्टि से लोकमङ्गल हेतु प्रार्थना की गयी है। चराचर जगत् परम् सत्ता का साकार स्वरूप है। ऋषियों ने इन मन्त्रों के माध्यम से पर्यावरण में देवत्त्व-बोध की स्थापना किया है। यही भाव निम्न काव्य पङ्क्तियों में भी अनुस्यूत है -

'धत्ते भरङ्कुसुमपत्रफलावलीनां घर्म्यव्यथा स्पृशतिसीतभवांरूज च।
यो देहमर्पयति चान्यसुखस्य हेतोस्तस्मै वदान्यगुरवे तरवे नमोऽस्तु'।।

(भामिनीविलास, 1/92)

अर्थात् जो फूलों, पत्तों और फलों के बोझ को धारण करता है। धूप से उत्पन्न होने वाली व्यथा का अनुभव करता है और दूसरों के सुख के निमित्त अपने शरीर को समर्पित कर देता है, दानियों में श्रेष्ठ उस वृक्ष को नमस्कार है। इसी

पर्यावरण यज्ञ स्वरूप है। यज्ञ उसे कहते हैं जो सदैव उपकार करे। पर्यावरण सदैव हमारा उपकार करता है, वह हमें जीवन देता है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं -

'अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्'।।

(श्रीमद्भगवद्गीता, 3/14–15)

अर्थात् सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है। कर्म समुदाय को तुम वेद से उत्पन्न और वेद को अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ जानो। इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित हो लोक का कल्याण करते हैं। सम्पूर्ण प्रकृति यज्ञमय है। वह प्रत्येक क्षण सबका कल्याण करती है। यज्ञ प्रकृति पूजा का प्रतीक है। इससे विश्व का कल्याण होता है, परमात्मा प्रसन्न होते हैं। यज्ञ एक भावना है, कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, चन्दन, जायफल, इलायची, जावित्री आदि सुगन्धित द्रव्यों की आहुति से वायुमण्डल शुद्ध होता है। आम, गुलर, पीपल, शमी, पलाश, वट, बेल आदि समिधाएँ यज्ञ कुण्ड में पड़ने पर वायुमण्डल को शुद्ध करती हैं। शुद्ध वायुमण्डल ही हमारे जीवन का आधार है। यज्ञ के द्वारा हम ईश्वर को प्रसन्न करते हैं, ईश्वर हमें अन्नादि से प्रसन्न करता है। यही यज्ञ का महनीय योगदान है। संस्कृत काव्यों में यज्ञ को इसीलिए अनिवार्य कर्म बताया गया है। यही विश्व में बढ़ रहे प्रदूषण को दूर करने का सर्वोत्तम् साधन है।

सभी प्राकृतिक घटक देवभाव से मण्डित हैं। इनका अनावश्यक दोहन नहीं करना चाहिए। मानव को सीमित संसाधनों से अपना कार्य करना ही श्रेयस्कर है। पर्यावरण हमे ईश्वर द्वारा वरदान स्वरूप प्राप्त हुआ है। इसलिये इसे ईश्वर की अहेतुकी कृपा मानकर इसके प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हुए इसका संरक्षण एवं संवर्धन करते रहना चाहिए। पर्यावरण के प्रत्येक घटक को जीवन धारक होने के कारण भारतीय मनीषियों ने देवता की संज्ञा देकर पूजनीय एवं वन्दनीय कहा है।

पर्यावरण का त्रिविध स्वरूप चाहे वह आधिभौतिक हो या आधिदैविक या

इच्छित लोग उसे पूजते हैं। पुराणों में अनेक प्रतीकात्मक कथाएं प्रकृति, वनस्पति व देवताओं को लेकर मिलती हैं। जिस प्रकार अश्वत्थ अर्थात् पीपल को विष्णु का प्रतीक माना जाता है उसी प्रकार जटाधारी वट वृक्ष को साक्षात् जटाधारी पशुपति शङ्कर के रूप में प्रदर्शित किया गया है। जैसा कि स्कन्दपुराण में कहा भी गया है-

'अश्वत्थरुपीविष्णु स्याद्वटरुपां शिवो यतः'।

अर्थात् पीपल रूपी विष्णु व वट रूपी शिव हैं। वृक्ष-वनस्पतियों के सम्बन्ध में नारदपुराण में आया है कि जो कोई एक पीपल, एक नीम, एक बड़, दश पुष्पों वाला पौधा, लताए, दो अनार, दो नारंगी और पाँच आम का वृक्ष लगाता है वह नरक में नहीं जाता है -

अश्वत्थमेकं पिचुमर्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशपुष्पजातिः।
द्वे द्वे तथा दाडिममातुलिंगे पंचाम्ररोपी नरकं न याति।।

(वाराहपुराण 172/36)

समुद्र नामक एक और वट वृक्ष का उल्लेख प्राप्त होता है जिसकी डाली गरुड़ ने तोड़ दी थी। रामायण के अक्षय वट की कथा लोक प्रचलित ही है। परन्तु वाल्मीकि रामायण ने इसे श्यामन्योग्र कहा गया है। अतः वृक्ष-वनस्पतियों के प्रति भी प्राचीन परम्परा में दैवी भाव विद्यमान था। भारतीय संस्कृति में पशु-पक्षियों के देव तुल्य माना गया है जो हमारे पर्यावरण के अङ्ग हैं। अनेक स्थलों पर इनकी अभ्यर्थना की गयी है। अभ्यर्थना करने का तात्पर्य है इनके प्रति सचेत होना। निरन्तर विलुप्त होते वन्य पशु-पक्षियों के कारण पर्यावरण में गंभीर असन्तुलन पैदा हो गया है। पृथ्वी पर पर्यावरण की समृद्धि एवं सन्तुलन हवा, जल, पेड़-पौधे के साथ-साथ जीव-जन्तुओं पर आधारित है। इनमें से कोई एक दूसरे से कमतर नहीं हैं बल्कि एक दूसरे के पूरक ही हैं। किसी एक के दुर्बल होने से दूसरे पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। आज पशु-पक्षियों की बहुसंख्य प्रजातियाँ समाप्त हो चुकी हैं। इनकी निरन्तर घटती संख्या अत्यन्त चिन्तनीय है क्योंकि पर्यावरण के संरक्षण, सन्तुलन एवं विकास के लिए इनका अस्तित्त्व अनिवार्य है। बाणभट्ट ने जाबालि आश्रम में एक शुकशावक की ऋषिकुमार द्वारा प्राण रक्षा करवाकर जन्तुओं के प्रति गहन सम्वेदना को व्यक्त किया है, तो कालिदास ने भी शकुन्तला का हिरन से सहोदर सम्बन्ध दिखलाकर वन्य जीवों के प्रति आत्मीय भाव प्रदर्शित किया है। अतः हमें अपनी आर्ष परम्परा से तादात्म्य भाव स्थापित कर वन्य जीवों एवं वनस्पतियों के प्रति आत्मीयता का भाव रखते हुए सब प्रकार से इनकी सुरक्षा

प्रकार सभी प्राकृतिक तत्त्व हमारे लिए पूजनीय हैं। प्रकृति के कण-कण में ईश्वर व्याप्त हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु इत्यादि सभी परम् पिता के प्रसाद हैं। ईश्वर के प्रदायस्वरूप इन तत्त्वों पर आस्था रखना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है। पृथ्वी से अन्न मिलता है जिसे खाकर हम पोषित होते हैं। अथर्ववेद में मातृरूपिणी भूमि को समग्र पार्थिव पदार्थों की जननी तथा पोषिका रूप में समुद्घोषित किया गया है। प्रजा के समस्त बुराइयों, क्लेशों और अनर्थों से बचाने एवं सुख-समृद्धि के लिए इनसे प्रार्थना की गयी है। पृथ्वी विषयक इस सूक्त से 'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः' का उद्घोष प्राप्त होता है। जल भी देवमय है। वह अपने दैवी भाव से ही सबको तत् क्षण ही शीतल बना देता है। जल में भगवान् विष्णु निवास करते हैं। इस प्रकार जल भी हमारे लिए पूजनीय है। जल की पूजा विष्णु की पूजा है। जीवन के प्रत्येक स्थल पर जल जीवनीय स्वरूप धारण किया हुआ है। इसी प्रकार के जल हमारे लिए परम् मूल्यवान हैं। चाहे वह वर्षा का जल हो या नदियों का या जलाशय का जल हो या भूमिगत जल ही क्यों न हो, सभी हमारे जीवन के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। कोई मनुष्य के लिए उपयोगी है, कोई पशु-पक्षियों के लिए, कोई कृषि के लिए उपयोगी है। सबसे जीवन का सिञ्चन होता है। इसके महनीयता को देखकर भारतीय परम्परा में इन्हें देवत्त्व स्वरूप से विभूषित किया गया है। नदियों को देवी माता माना जाता है। कूप, जलाशय के जल में भी दैवी भाव का दर्शन किया जाता है। तेज के नियामक सूर्य हैं, सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। प्राणी मात्र के जीवन धारक हैं। इनके प्रति सनातन काल से ही समर्पण का भाव प्रदर्शित किया गया है। वायु भी हमारे जीवन के लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, इसके अभाव में हम एक पल भी नहीं रह सकते हैं। मनुष्य के चारो ओर वायु ही तो है जो उसे प्रफुल्लित की है। वायु की भी स्तुति की गयी है, इन्हें देव माना गया है। आकाश सबका आश्रय स्थल है। सभी इसमें स्वच्छन्द विचरण करते हैं। ये पञ्चमहाभूत हमारे लिए आस्था के केन्द्र बिन्दु हैं, इनकी रक्षा एवं सम्वर्धन करना ही इनके प्रति श्रद्धा-भक्ति है। यदि हम इनके प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं तो हम स्वयं ही उपेक्षित होकर प्रकृति द्वारा दण्डित किये जाएँगे, क्योंकि प्रकृति किसी को क्षमा नहीं करती है।

वृक्ष-वनस्पतियाँ भी पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। इनसे वायु और वर्षा का सन्तुलन बना रहता है। आम, नीम, तुलसी, पीपल और वट इत्यादि वृक्षों की स्तुति सम्पूर्ण साहित्य में प्राप्त होती है। वटवृक्ष त्रिमूर्ति का प्रतीक माना जाता है। इसकी छाल में विष्णु, जड़ों में ब्रह्मा और शाखाओं में शिव विराजते हैं। अग्निपुराण के अनुसार बरगद का वृक्ष उत्सर्जन को दर्शाता है। इसीलिए सन्तान के लिए

विषयानुक्रमणिका

पुरोवाक्	:		i-ii
शुभाशंसा	:		i-ii
आत्म–निवेदन	:		i-iv
भूमिका	:		i-vi
प्रथम-अध्याय	:	वेदों में पर्यावरण का दैव स्वरूप	1-22
द्वितीय-अध्याय	:	आर्ष-काव्यों में पर्यावरण का दैव स्वरूप	23-44
तृतीय-अध्याय	:	गद्य-काव्यों में पर्यावरण का दैव स्वरूप	45-55
चतुर्थ-अध्याय	:	पद्य-काव्यों में पर्यावरण का दैव स्वरूप प्रथम खण्ड : महाकाव्य, द्वितीय खण्ड : गीतिकाव्य, तृतीय खण्ड : मुक्तक	56-83
पञ्चम-अध्याय	:	चम्पू-काव्यों में पर्यावरण का दैव स्वरूप	84-91
षष्ठ-अध्याय	:	रुपकों में पर्यावरण का दैव स्वरूप	92-110
उपसंहार	:		111-115
सन्दर्भ ग्रंथ-सूची	:		116-123

करनी होगी अन्यथा तीव्रगति से प्रदूषित एवं क्षरित होता हुआ पर्यावरण हमारे सर्वनाश का निमित्त बन जायेगा।

आज प्राकृतिक आपदाओं से पूरा विश्व त्रस्त है। कहीं बाढ़ आ रही है, कहीं सूखा पड़ रहा है और कहीं ज्वालामुखी विस्फोट हो रहा है। अनावृष्टि, अतिवृष्टि की समस्या से सम्पूर्ण संसार ग्रसित है। ग्लोबल वार्मिंग से सम्पूर्ण विश्व भयाक्रान्त है। विज्ञान प्रदत्त साधनों के सुलभता के बावजूद आज हम दीन-हीन प्राणी की भाँति किंकर्तव्यविमूढ से हो गये हैं। लोक मंगलकारी विज्ञान हमारे लिए वरदान न बनकर अभिशाप बन गया है। यदि मनुष्य चेतनाशून्य होकर प्रकृति की इसी तरह उपेक्षा पूर्वक दोहन करता रहा तो उसे अवश्य ही दण्डित होना पड़ेगा-

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्म शुभाशुभम्'।

अर्थात् किये गये शुभ-अशुभ कर्मों का परिणाम भोगना, यह प्रकृति का शाश्वत नियम है। प्रकृति किसी को क्षमा नहीं करती है। प्रकृति के लिए सब बराबर हैं, चाहे वह विपन्न हो या साधन सम्पन्न। प्रकृति का नियम सबके लिएं एक समान है। किसी गाँव में आग लगी हो तो वह किसी एक घर तक सीमित नहीं रहती। यदि आप घर में आलसी बन कर सोते रहें तो एक-एक करके आग सबके घरों को जला डालेगी। विकृत पर्यावरण भी अग्नि के समान सबको जला डालेगा, इसकी भी रक्षा सबको मिलकर करनी होगी। इस संसार की दो शक्तियाँ है, एक जड़ शक्ति दूसरी चेतन शक्ति। बिना चेतन के जड़ शक्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जड़ और चेतन दोनों शब्द और अर्थ की भाँति सम्पृक्त हैं। अस्तित्त्व के चैतन्य भाग को परा शक्ति और पञ्चभौतिक भाग को अपरा शक्ति कहा जाता है। परा और अपरा शक्ति का सहकार भाव ही सृजन का मूल है। प्रकृति हमे परस्पर सहकार एवं सौहार्द्र भाव का ही सन्देश देती रहती है। इस प्राकृतिक सन्देश को अंगीकार करके हम विश्वकल्याण की भावना साकार कर सकते हैं। जिस प्रकार परा और अपरा शक्तियाँ समन्वित भाव से सृष्टि का सञ्चालन करती हैं उसी प्रकार आध्यात्म और विज्ञान भी परस्पर समन्वित रहकर पर्यावरण को प्रदूषण रहित एवं संरक्षित रख सकते हैं।

सञ्जयकुमार

अध्याय - 1

वेदों में पर्यावरण का दैव स्वरूप

वेद भारतीय जीवन का सारभूत तत्त्व है। इसी के आलम्बन में ही जीवन पुष्पित एवं पल्लवित होता है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र से लेकर व्यावहारिक जीवन तक के विविध तत्त्वों से वेद ओत-प्रोत है। इनकी संख्या चार है - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनमें पर्यावरण का स्वस्थ चिन्तन भी वैदिक ऋषियों द्वारा किया गया है। वेदों में पर्यावरण के विषय में अनेक तत्त्वों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिससे पर्यावरण संरक्षण भली-भाँति किया जा सकता है। वैदिक ऋषि सदैव प्रकृति में देवत्त्व का दर्शन करता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश की इन्होंने स्तुति की है। वृक्षों-वनस्पतियों में जीवन का व्यवहार किया है। पशु-पक्षियों से स्नेह-सिक्त व्यवहार का प्रवचन दिया है और जीवों पर दया करने का पाठ पढ़ाया है। कण-कण में ईश्वर का दर्शन ही वैदिक ऋषि की सर्वोत्कृष्ट खोज है। जल, वायु और वनस्पतियाँ ही मिलकर पर्यावरण को संरक्षित करती हैं। इन्हीं तीनों से सम्पूर्ण विश्व आवृत्त है।[1] सम्पूर्ण सृष्टि इन्हीं तीनों पर अवलम्बित है। इन तीनों से निर्मित परिधि-कवच का कार्य करती है। प्रकृति के प्रत्येक कण में अन्तर्धि (आंतरिक शक्ति) और परिधि (वाह्य शक्ति) होती है। अन्तर्धि इसे गति एवं ऊर्जा प्रदान करती है और परिधि इसकी रक्षा करती है -

'अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणाम्'।[2]

यह पारिधि जीवन की रक्षात्मिका है। वन्यजीव वनों को यथावत रखते हैं। औषधियाँ, जल को आकर्षित कर पृथ्वी पर बरसाते हैं एवं वायु को शुद्ध करते हैं।[3] इस प्रकार इस परिधि के वने रहने से अर्थात् पारिस्थितिकीय सन्तुलन व पर्यावरण की शुद्धता बनी रहती है। संसार के सभी जीव पर्यावरण के लिए आवश्यक हैं। एक

1. अथर्ववेद, 18/1/77
2. वही, 12/2/44
3. तैत्तरीय ब्राह्मण, 3/2/2/5, 2/2/5/10 शतपथ ब्राह्मण, 2/2/4/5

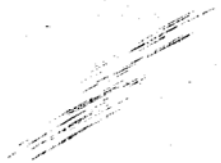

जीव दूसरे जीव द्वारा किये गये प्रदूषण को दूर करते हैं। पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, कीड़े इत्यादि मनुष्यों द्वारा किये गये अवशिष्ट पदार्थों को अपना भोजन बनाकर पर्यावरण का संरक्षण करते हैं। मछलियाँ गन्दे जल को स्वच्छ बना देती हैं। वैदिक काल में सभी लोग इस बात से अवगत थे कि प्रकृति में प्राप्त कोई भी जीवधारी अनावश्यक नहीं है। पर्यावरण की शुद्धता एवं संतुलन में प्रत्येक जीवधारी का विशेष दायित्व है। अपने इस ज्ञान के कारण वे भयानक विषधर सर्पों का नमन करते थे -

'येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम'।[4]

उन लोगों को ज्ञात था कि कृमियों, पशु-पक्षियों और जीव-जन्तुओं के न होने पर सम्पूर्ण पृथ्वी दुर्गन्ध युक्त हो जायेगी। यदि जलचर जीवों का निवास पोखरों, तालाबों और नदियों में न हो तो प्रतिक्षण जल में प्रदूषित एवं मलिन पदार्थों की असीमित वृद्धि हो जायेगी। हिंसक पशु, शाकाहारी पशुओं का भक्षण करके उनको नियंत्रित करते हैं, जिससे शाकाहारी पशुओं की संख्या और उपलब्ध वनस्पतियों में सन्तुलन बना रहता है। एक जीव दूसरे जीव पर आश्रित रहते हैं। यही प्राकृतिक नियम है। अभी-अभी नवीन अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि जिन वनों में जीवों का विनाश हो रहा है, वहाँ वनों का विकास मन्द हो गया है। यथा हरिद्वार से उत्तर में स्थित रामबाला के जंगलों के वन्य पशुओं को मार दिये जाने से वहाँ शालवन में नये पौधे नहीं उग रहे हैं, क्योंकि पत्तों की भूमि पर तह बन गयी है।[5] वन्य जीवों के रहने पर उनके आवागमन व भोज्य रूप पत्तों के उपयोग से पत्तों का एक स्थान पर ढेर नहीं हो पाता था और न परते ही बनती थी। भूमि साफ होती थी, जिससे नये पौधे आसानी से उग आया करते थे। एक ही स्थल पर पत्तों के ढेर जम जाने से अत्यधिक सड़न के कारण दुर्गन्ध निकलती है। पत्तों के ढेर पर नया स्वस्थ पौधा का निकलना सम्भव नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पर्यावरण की शुद्धता एवं पारिस्थितकीय सन्तुलन में वन्य जीवों के महत्त्वपूर्ण योगदान को दृष्टिगत रखते हुए वैदिक आर्यों के समान वन्य जीवों के साथ यथोचित व्यवहार ही करना चाहिए।

---

4. अथर्ववेद, 10/4/23

5. संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण चेतना, विश्वभारती अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर, 2004, पृ.10

सभी जीव एवं वनस्पति, जगत् और मनुष्य के परस्पर सामंजस्य के रूप में प्राचीन भारत के ऋषि तपोवन का अद्‌भुत परिचय मिलता है। भारतीय ऋषि सम्पूर्ण महनीय आर्ष साहित्य की रचना रमणीय वृक्ष-वनस्पतियों के छाया में ही किये हैं। फलस्वरूप उन्होंने वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण और महाभारत इत्यादि ग्रन्थों में वृक्ष-वनस्पतियों का सजीव चित्रण किया है। वृक्ष-वनस्पतियों से उनका अत्यधिक लगाव था। वे उनमें देव भाव रखते थे। उन्हें इनमें जीवन का संज्ञान था। वृक्ष सदैव शीतल छाया से क्लान्त मानव को शीतलता प्रदान करते हैं। ऋषियों ने उनके महत्त्व को बहुत समीप से जाना-समझा था। उन्हें रेगिस्तान में रहने का भी अनुभव था और जंगल में भी। वे सदैव यही उपदेश दिया करते थे कि वृक्ष कितने उदार हैं, जो मुझे छाया, फल और वायु देते हैं। बदले में वे हमसे कोई अपेक्षा नहीं रखते हैं। वे सदैव हमारे जीवन के पोषण के लिए उद्योग करते हैं। स्वयं धूप और बरसात की पीड़ा को सहन करते हुए हमे अपने गोद में आश्रय देते हैं। हम सभी इनके ऋणी हैं। वृक्षों के उपकार का हमें सदैव ध्यान रखना चाहिए और कथमपि अपकार नहीं करना चाहिए। हम वृक्षों को कुछ द ता नहीं सकते लेकिन उनकी रक्षा तो अवश्य कर सकते हैं। वृक्षों के इसी महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए ऋषियों ने वेद मन्त्रों के द्वारा वृक्षों, वनस्पतियों, औषधियों, वनों तथा वनों के संरक्षकों तक का स्तवन किया है और उन्हें मधुमय, हितकारी व शान्तिदायक होने की मंगल कामनाएं की हैं। यथा -

'नमो वृक्षेभ्यः[6], नमो वन्याय च[7], वनानां पतये नमः[8],
औषधीनां पतये नमः[9], मधुमान्नो वनस्पतिः[10]
ओषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः[11]

इन मन्त्रों से ज्ञात होता है कि ऋषियों की इनके प्रति अगाध श्रद्धा थी। श्रद्धा बनावटी नहीं होती है। वह तो किसी के गुणों का दास होती है और हृदयाकाश में स्थान बना लेती है। लोककल्याण की भावना रखने वाले वृक्ष-वनस्पतियाँ हमें अपने जीवन काल में प्राण वायु, फल-फूल प्रदान करते हैं और सूख जाने पर काष्ठ

---

6. यजुर्वेद, 16/17
7. वही, 16/34
8. वही, 16/18
9. वही, 16/16
10. ऋग्वेद 1/90/8
11. यजुर्वेद 36/17

प्रदान करते हैं, जिससे भवन और सेज सवरती है। उनके काष्ठों से बने फर्नीचर इत्यादि से हमारा दैनिक जीवन बहुत सुविधापूर्ण बन गया है। अतः हमें इनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए, कृतघ्न नहीं। इस प्रकार वेदों में वृक्षों के रक्षा के साथ-साथ वृक्षारोपण का भी प्रसंग प्राप्त होता है। ऋग्वेद के एक स्थल पर वृक्षारोपण एवं संरक्षण की ओर संकेत प्राप्त होता है -

'वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं निषू दधिध्वम् अखनन्त उत्सम्'।[12]

वेदों में वनस्पतियों के प्रसंग में पीपल, पृश्निपर्णी, श्यामा, लाक्षा इत्यादि अनेक वनस्पतियों का वर्णन मिलता है। इनमें पीपल की आज भी पूजा होती है। इनमें आज की संस्कृति भी देवत्त्व का दर्शन करती है। वस्तुतः यह हमें अत्यधिक मात्रा में प्राणवायु देता है। पीपल वृक्ष के सन्दर्भ में अथर्ववेद में आया है कि -

'अश्वत्थो देवसदनः'।[13]

अर्थात् पीपल देवों का सदन है। शायद इसी आशय से पीपल की पूजा की जाती है, मात्र एक पीपल की पूजा कर देने पर सभी देवताओं की पूजा स्वतः हो जाती है। वेदों में वनस्पतियों को मल का नाशक बताया गया है -

'अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी।
आपो मलमिव प्राणैक्षीत्सर्वान मच्छपथा अधि'।।[14]

यह सत्य ही है। वृक्ष कार्बनडाई-आक्साइड नामक दूषित गैस का अवशोषण कर बदले में हमे प्राण वायु (आक्सीजन) देते हैं। स्वयं विष पीते हैं और हमारे लिए अमृत तुल्य वायु की व्यवस्था करते हैं। इस पृथ्वी पर ऐसा कोई उपकारी नहीं है, जो स्वयं विषपान करता है और बदले में अमृत देता है। किसी विशेष प्रयास के बिना कोई भी विष को अमृत में परिणित नहीं कर सकता, जबकि वृक्ष विषपान कर प्राणवायु रूपी अमृत दान करते रहते हैं। इसे हम दैवीय सत्ता का चमत्कार ही कह सकते हैं। वृक्ष-वनस्पतियों में सभी ईश्वरीय गुण विद्यमान हैं। ईश्वर भी जीव का बिना कुछ लिये कल्याण करता है और वृक्ष भी, अतः वृक्षों की रक्षा करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है।

12. ऋग्वेद, 10/110/11
13. अथर्ववेद, 5/4/3
14. वही, 2/7/1

जीवन के लिए शुद्ध वायु की महती आवश्यकता होती है। वेदों में शुद्ध वायु के प्रति गम्भीर आस्था व्यक्त की गयी है। यजुर्वेद के मुख्य देवता वायु ही है। प्राचीन काल में वायु को दूषित होने से बचाने के लिए ऋषियों का विशेष चिन्तन था, फलस्वरूप वायु शुद्ध होती थी। परन्तु वर्तमान समय में पूरा वायुमण्डल प्रदूषित हो चुका है। हमारे देश में औद्योगिकरण एवं शहरीकरण के कारण वायुमण्डल में विद्यमान हवा की शुद्धता में अत्यधिक गिरावट आयी है। रेल, मोटर, डीजल, पेट्रोल, कोयला इत्यादि के धूम से वातावरण प्रदूषित हो चुका है। वायु प्रदूषण इतना विकराल रूप ले चुका है नंगी आँखों से शहर में घूमना दूभर हो गया है। सांस लेने में दम घुटने लगता है। इन प्रदूषणों में कार्बन मोनो-आक्साइड गैस, हवा में विद्यमान दूषित कण वाले पदार्थ, हाइड्रोकार्बन और नाइट्रोजन आक्साइड शामिल है। ये सभी गैसें जीवन के लिए घातक हैं। इन गैसों का शोधन होना चाहिए। वृक्षों द्वारा ही इन गैसों का शोधन सम्भव है। यजुर्वेद में वायु की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि -

'तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।

पथो अनक्तु मध्वा घृतेन'।[15]

अर्थात् उत्तम् गुणवाले पदार्थों में उत्तम् गुणवाला, प्रकाशरहित तथा सबको प्राप्त होने वाला जो वायु शरीर में विचरण करता है, उसको तुम जानो। वायु को शुद्ध और अशुद्ध अर्थात् आक्सीजन एवं कार्बनडाई आक्साइड इन दो रूपों में विभाजित करते हैं; यथा ऋग्वेद में कहा गया है -

'द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।

दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः'।।[16]

अर्थात् प्रत्यक्षभूत दोनों प्रकार की हवाएं सागर पर्यन्त और समुद्र से दूर प्रदेश पर्यन्त बहती रहती है। हे साधक! एक तो तेरे लिए शक्तिदायक हैं और जो दूषित है उसे दूर फेक देती है। हजारों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वज इस तथ्य से अवगत थे कि वायु में कई गैसों का मिश्रण होता है, जिनके अलग-अलग गुण एवं अवगुण

---

15. यजुर्वेद, 27/12

16. ऋग्वेद, 10/37/2

हैं। इनमें ही प्राण वायु भी है, जो जीवन के लिए अत्यावश्यक है। आक्सीजन भारी गैस है, अन्य हल्की हैं। इसलिए वही नीचे होती है अन्य ऊपर। इसके भारी दबाव के कारण अन्य गैस अत्यधिक दूर हो जाती हैं। यदि इसके भारीपन में गिरावट आई तो अन्य गैसे भी धरातल के समीप आ जायेंगी। वायुमण्डल में अनेक प्रकार की गैस हैं, जिनमें एक प्राणवायु भी है, जो जीवन के लिए अत्यावश्यक है -

'यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे'।।[17]

अर्थात् इस वायु के गृह में जो अमरत्त्व की धरोहर स्थापित है वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है। शुद्ध वायु हमें कई रोगों से मुक्त करती है -

'आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दशं ते भद्रमाभार्ष परा यक्ष्मं सुवामि ते।।
वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।
प्रण आयूंषि तारिषत'।।[18]

अर्थात् शुद्ध ताजी वायु अमूल्य औषधि है, जो हमारे हृदय के लिए दवा के समान उपयोगी है, आनन्ददायक है। वह उसे प्राप्त कराता है और हमारे वायु को बढ़ाता है। वायु का वैदिक साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है, वायु ही बादल को गतिशील बनाता है। फलस्वरूप सभी क्षेत्रों में समान रूप से वर्षा होती है। वायु के प्रभाव से ही किसी स्थान पर अत्यधिक वर्षा होती है और किसी स्थान पर अत्यन्त कम। अच्छी वर्षा होने पर ही अच्छी कृषि का होना सम्भव है, जहाँ अच्छी वर्षा नहीं होगी वहाँ पीने के लिए भी जल का संकट हो जायेगा। यजुर्वेद में वायु को पवित्रता का विस्तार करने वाला बताया गया है। वहाँ कहा गया है कि पवित्रता का विस्तार करने वाले वायुदेव हैं। आप अनन्त गुणों के आश्रय हैं, हमारे जीवन को सद्गुणों से विभूषित करें। आपका तृप्तिदायक श्रेष्ठ आहार सोमरस आपको समर्पित है, जिसका आपने पहले भी पान किया है। हे सोमदेव! वायु देवता के लिए आपको ग्रहण करते हैं -

---

17. ऋग्वेद, 10/186/3
18. वही, 10/137/4, 18/186/1

'आ वायो भूष शुचिपाऽउप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्त्वा'।[19]

यहाँ एक आयुर्वेद का तत्त्व भी प्राप्त होता है। आयुर्वेद की यह प्राचीन परम्परा रही है कि जिस औषधि का उपयोग करना होता है, उसे अपना पहले प्रयोजन बताकर ही प्रयोग में लेना चाहिए। ऐसा करने पर ही औषधि के पवित्र गुण से स्वास्थ्य लाभ होता है, वायु के महत्ता का प्रतिपादन करते हुए और भी कहा गया है कि -

'समुद्रोसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा।
मारुतोसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि
स्वाहावस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा'।[20]

अर्थात् हे वायु ! आप सागर के सदृश अगाध जल से पूर्ण हैं, नभ-मण्डल में सर्वत्र व्याप्त रहने वाले, वृष्टि द्वारा भूतल को आर्द्र करने वाले, सब सुखों को प्रदान करने वाले तथा परम हर्ष उत्पन्न करने वाले हैं। आप अन्तरिक्ष में गमनशील मरुदगण स्वरूप हैं। सबको अपने आश्रय में संरक्षण देने वाले, अन्न उत्पन्न करने वाले, सम्पूर्ण सुख और हर्ष उत्पन्न करने वाले हैं। आप हमे परिरक्षित करें। आपके निमित्त प्रीतिपूर्वक आहुति अर्पित है। यहाँ वायु देवता के व्यापक स्वरूप का परिचय दिया गया है। वायु से ही वृष्टि होती है। वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है। अगले मन्त्र में इसी भाव को ऋषि द्वारा व्यक्त किया गया है -

'पीवो अन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः।[21]

अर्थात् अन्नादि से पुष्ट हुए ऐश्वर्य बढ़ाने वाले सद्बुद्धि सम्पन्न वायुदेव अपने आश्रय में रहने वाले स्वस्थ अश्वों का सेवन करते हैं। वे अश्व वायु देव के लिए उपलब्ध रहते हैं। श्रेष्ठ मनुष्य श्रेष्ठ सन्तान आदि की प्राप्ति के लिए ऐसा ही यज्ञ सम्पन्न करें। यहाँ अश्व को यज्ञीय ऊर्जा का प्रतीक माना गया है। अन्नतर आया

19. यजुर्वेद, 7/7
20. वही, 18/45
21. वही, 27/23

है कि द्यौ-पृथिवी ने जिस वायु (प्राण तत्त्व) को ऐश्वर्य के लिए पैदा किया, उसी वायु को दिव्य वाक्देवी धन के निमित्त धारण करती हैं। इसके पश्चात् शुद्ध सम्पत्ति को धारण करने वाले वायु को सभी प्राणी ब्रह्माण्ड में रहकर सेवन करते हैं -

'राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम्।

अध वायुं नियुतः सश्चतः स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके'।[22]

यहाँ वायु को सम्पूर्ण ऐश्वर्य का स्वामी माना गया है इसीलिए उससे याचना की जाती है कि हे वायो ! यज्ञ मण्डल में आहूति प्रदान करने वाले याचक के पास आप अश्व की भांति जिस तीव्र गति से जाते हैं, उसी प्रकार हमे वीर-संतान, गौ, अश्व आदि अपार वैभव प्रदान करें -

'प्र याभिर्यासिदाश्वाँ समच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे।

नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधेः।।[23]

इसी प्रकार आगे भी वायु देवता के महनीयता को प्रकाशित करते हुए अनेक विधि से स्तवन किया गया है। वायु देवता को भी यज्ञ में पधारने का निवेदन ऋषियों द्वारा किया गया है - हे वायु! आप सैकड़ों, हजारों अश्वों के द्वारा खीचे जाते हुए वाहनों पर आरुढ होकर हमारे इस यज्ञ में पधारें और इसके सेवन से तृप्त हों तथा हम सबको भी हर्षित करें। आप अपनी कल्याणकारी साधनों द्वारा हमारी सदैव रक्षा करें।[24] वायु यज्ञ से शुद्ध हो जाता है। तृप्त हो जाता है, मधुर पान के योग्य बन जाता है। यज्ञ के महत्त्व को हम आगे बतायेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि वायु के व्यापक स्वरूप का परिचय वेदों में दिया गया है। जिससे हम उनके प्रति आस्था और विश्वास रख सके।

वायु अमृत तुल्य है। हमें हर क्षण शुद्ध वायु की आवश्यकता होती है। सभी जीवों के लिए जीवन का आधार वायु ही है। वायुमण्डल में अनेक प्रकार के गैसों का समिश्रण है। लेकिन जीवनीय गैस आक्सीजन मात्र 21% ही है। 78% नाइट्रोजन है, 9% अन्य गैसे हैं। इसीलिए ऋग्वेद में कहा गया है कि इस वायु

---

22. यजुर्वेद, 27/24
23. वही, 27/27
24. वही, 27/28

गृह (वायुमण्डल) में जो अमरत्त्व की धरोहर स्थापित है, वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है। वायु औषधि स्वरूप है। शुद्ध वायु अनेक रोगों को दूर कर देता है, इसमें ऐसी शक्ति विद्यमान है कि एक साथ मानस और शरीर दोनों को प्रफुल्लित कर देता है। शीतलता प्रदान कर देता है। प्रदूषित वायु से हृदय एवं चर्मरोग होने की अत्यधिक सम्भावना होती है। अतः वायुमण्डल को शुद्ध रखना हम मानवों का बहुत बड़ा कर्त्तव्य है। वायुमण्डल के शुद्ध होने पर ही हमारा जीवन स्वस्थ रह सकता है। प्राण वायु के बिना हम मानवों का जीवन अपने अवस्था में कायम नहीं रह सकता। हम लोग इस दैवी तत्त्व का पान कर अपने जीवन को धारण करते हैं। इसके बिना सम्पूर्ण सृष्टि काल के गाल में समा जायेगी और धरती मरुस्थल बन जायेगी। इसीलिए ऋषियों ने सभी प्राकृतिक तत्त्वों में देवत्त्वभाव का दर्शन किया है। सबके प्रति आस्था व्यक्त किया है, जिससे मेरा जीवन पुष्ट होता है, वह हमारा इष्ट ही है। वायु तो जीवन का संरक्षक है। उसी को हम पीते हैं और उसी को दूषित करते हैं। उसके दूषित होने पर हमे दूषित वायु को ही पीना पड़ेगा। जब हम दूषित वायु का सेवन करेंगे तो निश्चित रूप से शरीर और मन में विकार उत्पन्न होगा। इस प्रकार वायु जीवनीय तत्त्व है, दैवी स्वरूप है, अमृतमय है। इसे प्रदूषण से बचाना होगा। देवत्त्व का दर्शन करना होगा। वायुमण्डल सब जाति और सम्प्रदाय का मन्दिर है क्योंकि यह सबका एक साथ कल्याण करता है। यह किसी में विभेद नहीं करता है। सबको अपना समझता है। अतः उसे भी हम अपना समझें। उसके प्रति श्रद्धा रखे। यही वैदिक ऋषियों का सन्देश है।

जल भी वायु की भाँति जीवन का अविभाज्य अङ्ग है। इसके होने पर जीवन है और न होने पर नहीं। इसलिए संस्कृत में जल को जीवन की संज्ञा दी गयी है। वेदों में इस जीवनीय तत्त्व के संरक्षण के सम्बन्ध में अनेक तथ्य सामने आते हैं। इसके बिना मानव चेतनाशून्य हो जायेगा और पृथ्वी का स्वरूप विकराल हो जायेगा। जल ही प्रकृति पूजा का स्थायी आधार है। वैदिक ऋषि जल की शुद्धता पर विशेष बल देता है क्योंकि शुद्ध जल में रोगनाशक तत्त्व होते हैं। यही तो दीर्घ जीवन का सूत्र हे और सृष्टि का मूलाधार है। वैदिक वाङ्मय में जल का महत्त्व लौकिक एवं पारलौकिक दोनों दृष्टि से वर्णित है। जल के लौकिक स्वरूप अर्थात् व्यावहारिक स्वरूप के अंतर्गत खान-पान, इसके उपयोग, दुरुपयोग आदि पक्षों पर विचार किया जाता है और पारलौकिक स्वरूप के अन्तर्गत जल का दैवी

स्वरूप वर्णित है। जल में दैवता का वास होता है। यह परम पवित्र है। जल विष्णु का निवास स्थल है। वरुण जल के देवता हैं। जलस्रोत नदियाँ पतित पावनी माँ हैं। पापों की क्षयकर्त्री हैं। गङ्गा, यमुना इत्यादि नदियाँ हमारी आस्था की केन्द्र बिन्दु हैं। इनका जल सामान्य जल नहीं बल्कि विष्णु का चरणोदक है।

जल सृष्टि का मूलाधार है। वृक्ष, वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी आदि सभी जीवधारियों का जीवन अमृत तुल्य जल पर ही अवलम्वित है, जल शाश्वत है। इसे अपवित्र नहीं करना चाहिए। प्रलय काल में जब कुछ भी शेष नहीं रह गया तब केवल जल ही संसार को आवृत किये हुए था। आकाश-पाताल का कुछ पता नहीं चलता केवल जल ही जल चारों तरफ विद्यमान था -

'नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्।।[25]

अर्थात् उस प्रलय काल में असत् नहीं था, न ही सत् था, न कोई लोक था, न ही आकाश था जो ऊपर द्युलोक इत्यादि थे, वे कहा किसकी सुरक्षा में चारों ओर आवृत्त किया था। क्या उस समय अपार जल था? कहने का अभिप्राय यह है कि इस धरा-धाम पर केवल जल तत्त्व ही था, शेष काल के गाल में समा गये थे। जल नित्य है, शेष अनित्य है। अतः इसकी रक्षा करना चाहिए। आगे और नासदीय सूक्त में ही आया है कि -

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।

तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम्'।।[26]

अर्थात् सृष्टि से पहले अन्धकार से आच्छादित जल था। यह सम्पूर्ण विश्व का कारण भूत चिह्नित जल था। जो अज्ञान में आवृत्त सर्वव्यापी था। वह एक तपस्या की महिमा से उत्पन्न हुआ था।

वेदों में जल के शुचिता एवं संरक्षण के सम्बन्ध में अनेक उल्लेखनीय सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, जिनको दृष्टिगत रखकर जल प्रदूषण को रोका ही नहीं जा सकता बल्कि जल को प्रदूषण मुक्त रखते हुए जल संरक्षण भली-भाँति किया जा

25. ऋग्वेद, 10/129/1

26. वही, 10/129/3

सकता है। आज जल-प्रदूषण की विभिषिका से पूरा विश्व संकटग्रस्त हो गया है। जल संगठनों की चेतावनी है कि एशिया के कुछ समुद्र तट मल-मूत्र तथा सीवरों के गन्दे पानी के कारण इतने दूषित हो चुके हैं कि वे स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न कर सकते हैं। यही स्थिति भारतीय नदियों की भी हो गयी है। इन जलों के अस्वाभाविक स्थिति के कारण जनसंख्या भी प्रभावित हो सकती है। इसी जनसंख्या को सकुशल रखने के लिए वैदिक ऋषियों ने जल संरक्षण के प्रति विशेष आग्रह किये हैं। ऋषि का कथन है कि भली-भाँति निरोगी तथा रोग विनाशक इस जल को मैं लाता हूँ। स्वच्छ जल पीने से मैं मृत्यु से बचा रहूंगा। अन्न, घृत, दुग्ध आदि सामग्री तथा अग्नि सहित घटों में सम्यक् रूप में बैठता हूँ-

'इमा आपः च भराम्यक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः।

गृहानुप प्रसीदाम्यमृतेन सहाग्निना'।।[27]

जल ही जीवन का प्राण है। जल से ही संसार का पालन-पोषण होता है। शुद्ध जल स्वास्थ्य के लिए उत्तम माना जाता है। धरती पर सत्तर प्रतिशत जल होने पर भी पीने योग्य जल मात्र एक प्रतिशत है। अतः शुद्ध जल की मात्रा को यथावत रखते हुए उसके मात्रा में वृद्धि करने की आवश्यकता है। शुद्ध जल को दृष्टिगत रखते हुए ऋषि का कथन है -

'श्वात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः।

ताऽअस्मभ्यमयक्ष्माऽअनमीवाऽअनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽऋतावृधः।।[28]

अर्थात् किसी प्रकार हानिकर रोगाणुओं और अशुद्धादि दोषों से रहित दिव्य गुणों वाले, जीवन देने वाले सुपरीक्षित शुद्ध जलों को पीकर मनुष्य स्वस्थ, बलवान् और सुखी रहे। शुद्ध जल में अच्छा स्वास्थ्य निहित है। अशुद्ध जल में अनेक प्रकार के कृमि रहते हैं, जो स्वास्थ्य के अनुकूल नही रहता है। उससे स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है। अथर्ववेद में आया है कि यदि शुद्ध जल का उपयोग किया जाय तो वह मङ्गल प्रदाता तथा घृत के समान पुष्टिदायक होता है। जल माधुर्यपूर्ण जलधाराओं का स्रोत है। जल में आयुर्वेदिक गुण हैं। जल भोजन पचाने

---

27. अथर्ववेद, 3/12/9

28. यजुर्वेद, 4/12

में अत्यन्त उपयोगी है। जल से प्राण-शक्ति सुवर्धित होती है। वह शान्ति, बल और पौरुष का आधार है। वह मानव को अमरता की ओर ले जाने वाला मूल तत्त्व है-

'आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौविभ्रत्याप इत् ताः।

तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्'।।[29]

जल मानव जीवन का नियामक है। जल के बिना जीवन और शुद्ध जल के बिना स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। ऋषि जल को सदैव प्रवाहित होने की कामना करता है। प्रवाहित जल स्थिर जल की तुलना में अल्प दोषयुक्त होता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि हमारे शरीर के लिए शुद्ध एवं स्वच्छ जल प्रवाहित होता रहे। जो कष्टदायक जल हैं, वह हमे अच्छा नहीं लगता। अतः उन्हें अपने से दूर रखते हैं। हे पृथ्वी माता स्वयं अपने को पवित्र बनाने वाला यह पदार्थ (जल) हमें सदैव सुलभ रहे -

'शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो न सेदुरप्रिये तं निदध्मः।

पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि'।।[30]

इस मन्त्र से यह प्रेरणा मिलती है कि नदियों के जल को अविरल बहने देना चाहिए। उनकी सुलभता प्रत्येक स्थान पर होनी चाहिए। पृथ्वी का सबसे उत्तम पदार्थ जल है, इसीलिए जहाँ-जहाँ जल सुलभता से प्राप्त होते हैं, वहाँ-वहाँ लोग अपना निवास स्थान बनाते हैं। नदियों के किनारे नगर बसने का सबसे बड़ा यही कारण है कि यहाँ जल सरलता से प्राप्त हो जाते हैं। जल के अविरल प्रवाह का संकेत ऋग्वेद के अनेक स्थलों में प्राप्त होता है, यथा-इन्द्र के पराक्रम युक्त कार्यों में जल-संरक्षण का विशेष स्थान है। उन्होंने जल को बरसाया तथा पर्वतों को काटकर नदियों को प्रवाहिता किया -

'अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम्'।[31]

इस धरा-धाम को शश्य-श्यामला बनाने और जन-जन को आनन्दित करनै के लिए ही इन्द्र ने अपनी शक्ति से जल वर्षा कराया। तत् पश्चात् उन

---

29. अथर्ववेद, 3/13/5
30. वही, 12/1/30
31. ऋग्वेद, 1/32/1

अवरुद्ध जलों को पर्वतों को काटकर प्रवाहित किया, जिससे यह शीतल मधुर जल सबके उपयोग में आ सके। जब इन्द्र ने जल को रोकने वाले 'अहि' को मारा तो रंभाती हुई बछड़े की तरफ तेजी से जाने वाली गायों के समान बहता हुआ जल तेजी से नीचे समुद्र की ओर जाने लगा -

'अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।

वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः'।।[32]

जल सदैव गतिशील होता है। उसकी प्रवाहमयता ही जलत्व का परिचायक है। इसीलिए जल के सन्दर्भ में कहा गया है -

'अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां'।[33]

अर्थात् कभी न रुकने वाला और न विश्राम करने वाला जल है। गतिशीलता ही जल का जीवन है। यदि हम जल को रोकते हैं तो उसका जीवन समाप्त करते हैं, उसका जलत्त्व समाप्त करते हैं। प्रत्येक पदार्थ का अपना स्वभाव होता है। यदि उसके स्वभाव को प्रतिबन्धित करेंगे तो उसमें विकार उत्पन्न होंगे और यह विकार ही प्रदूषण है। इसलिए वृत्त ने जब जल को रोक दिया था तब इन्द्र ने उसको मार कर जल को प्रवाहित किया -

'दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।

अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार।।[34]

इन्द्र एक पौरूषवान् देवता माने जाते हैं। वैदिक युग में भी अमृत तुल्य जल का राक्षसों द्वारा दुरुपयोग होने पर इन्द्र ने उसे दुरुपयोग होने से बचाया। इस तरह इन्द्र ने अपने शक्ति द्वारा सात नदियों को प्रवाहित किया -

'अवासृजः सर्तवे सप्तसिन्धून'।[35]

नदियाँ भी यही चाहती हैं कि कोई रोके नहीं। वह बलखाती हुई स्वतंत्रता चाहती हैं। तरंगित लहरों से कछारों को धोती हुई नदियों का गमन ही

32. ऋग्वेद, 1/32/2
33. वही, 1/32/10
34. वही, 1/32/11
35. वही, 1/32/12

उन्हें सुखी रखता है, जब विश्वामित्र नदियों से रुकने के लिए प्रार्थना करते हैं तो नदियाँ अपने भाव को प्रकट कर कह रही हैं -

'इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम्।

देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः'।।[36]

हे विश्वामित्र भुजाओं में वज्र को धारण करने वाले इन्द्र ने हमको खोदा है। उन्होंने नदियों को चारों ओर से घेर कर रोकने वाले वृत्र को मारा। सबको प्रेरणा देने वाले और शोभन हाथों वाले तेज दीप्तिमान इन्द्र हमे इस मार्ग से ले गये। हम विशाल जल से भरी नदियाँ उनकी प्रेरणा से बहती हैं। नदियों की गतिशीलता के लिए इन्द्र को श्रेय प्राप्त है। वही इनको अवाध गति प्रदान किये। जल के सम्बन्ध में वैदिक प्रेरणा विशेष उपयोगी है। नदियाँ कभी नहीं चाहती की उन्हें कोई रोके। नदियों को यहाँ सजीव रूप में चित्रित किया गया है। वे विश्वामित्र से वार्तालाप करती हुई कहती हैं -

'एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनि देवकृतं चरन्ती।

न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति।।[37]

अर्थात् इस जल से प्रान्तभूमियों को संतृप्त करती हुई हमलोग देवराज इन्द्र द्वारा बताये स्थान समुद्र की ओर जा रहे हैं। हमारा बहने में प्रवृत्त होता हुआ उद्योग रुकने के लिए नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट है कि नदियों को निर्बाध बहने देना चाहिए। उस पर बाँध इत्यादि बनाना कदापि उचित नहीं है। इनके प्रवाह को नहीं रोका जाना चाहिए।

गङ्गा, यमुना सतत् प्रवाहमान नदियों पर कृत्रिम तरीके से बाँध बनाकर जलधारा को अवरूद्ध करने का दुष्परिणाम कौन नहीं जानता है? पर्यावरणविद्, समस्त वैज्ञानिक आज नदियों के सतत् प्रवाह को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। परम पावनी गङ्गा भारतीय संस्कृति की पर्याय है, जिस विधि से उसका भौतिक स्वरूप दूषित हो गया है, उसे देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि हमारी भारतीय संस्कृति ही संकट में है तो अतियुक्ति नहीं होगी। योगेश्वर श्रीकृष्ण के जीवन

---

36. ऋग्वेद, 3/33/6

37. वही, 3/33/4

लीला सहचारिणी सूर्यतनया यमुना, विष्णु के परमपद से निकली गङ्गा, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम की जन्मस्थली अयोध्या की जीवन्त साक्षीभूत सरयू के भौतिक स्वरूप को देखकर किस भारतीय का हृदय उद्विग्न नहीं हो जाता है।

जल जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है, यह औषधि है। जल समस्त दुःखों को नष्ट करने वाला है। यह सर्वोत्तम वैद्य रूप तत्त्व है। कृषि आदि में, स्नानादि में जल के प्रयोग से दरिद्रता व रोगों का नाश हो जाता है। ऋग्वेद में जल को मातृ तुल्य प्रतिपादित किया गया है -

'आपो अस्मात् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।

विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि'।।[38]

अर्थात् जल शिवस्वरूप हैं। जैसे माता पुत्र का कल्याण करती है वैसे जल मनुष्य का कल्याण करते हैं। इन जलों को प्राप्त कर मनुष्य का जीवन प्रोन्नत हो जाता है। इस प्रकार जल अमृत रूप है, जीवनी शक्ति है। सब औषधियों का रस है। इसलिए जल के संरक्षण का वेद निर्देश देता है।

'माऽपो मौषधीर्हिंसीर्धम्नो धाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च'।[39]

ऋग्वेद में आया है कि जल मन को प्रसन्न रखता है -

'मनारुहाणा अति यन्त्यापः'।[40]

इसीलिए तो व्यक्ति को सर्वप्रथम जल से ही आतिथ्य सत्कार किया जाता है। जल जीवनीय तत्त्व है। शुद्ध जल हमे जीवन देता है। अशुद्ध जल अनेक प्रकार के व्याधियों का जनक होता है। शुद्ध जल हमारे प्राणों का रक्षक है। ऋग्वेद की एक ऋचा इस भावना को निम्न रूप में व्यक्त करती है -

'शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये

शं योरभि स्रवन्तु नः'।[41]

---

38. ऋग्वेद, 10/17/10
39. यजुर्वेद, 6/22
40. ऋग्वेद, 1/32/8
41. वही, 10/9/4

अर्थात् सुखमय जल हमारे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए तथा रक्षा के लिए कल्याणकारी हों। जल हम पर सुख समृद्धि की वर्षा करे। जल मानव के मुखमण्डल के सौन्दर्य को बढ़ाने में कोमलता तथा कान्ति प्रदान करने में औषधि स्वरूप है। प्राण और कान्ति, बल और पौरुष देने वाला अमरत्त्व की ओर ले जाने वाला मूलतत्त्व जल है। अथर्ववेद में यह भी कहा गया है कि जल से देखने, सुनने और बोलने की शक्ति प्राप्त होती है -

'आदित्पश्याम्युत वा श्रृणोम्या मा घोषो गच्छति वाड़ मासाम्।

मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः'।।[42]

इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि शरीरगत लावण्य कोमलता आदि जल के चमत्कार से ही उत्पन्न होती है। स्वच्छ जल सर्वोत्तम वैद्य और दूषित जल अनेक रोगों का आमंत्रण देने वाला होता है। भोजन को पचाने में भी जल महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। मनुष्य के प्रत्येक कार्य में जल अनिवार्य तत्त्व है। जीवन और जल का अयुत सिद्ध सम्बन्ध है। इसीलिए कहा भी गया है कि -

'आपो वै प्राणाः'।[43]

अर्थात् जल ही प्राण तत्त्व है। जल औषधि है जिससे रोग दूर हो जाते हैं-

'आपो ह वाऽओषधीनां रसः'।[44]

ऋग्वेद में आया है कि दिव्य जल सभी प्रकार के मल का प्रच्छालन करता है -

'विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीः'।[45]

अतः इन परम् पवित्र जल पदार्थ का रक्षा करना हम मानवों का परम् पवित्र कर्त्तव्य है। जल के बिना हमारी इन्द्रियाँ भी निष्क्रिय हो जाती हैं। देखने-सुनने की शक्ति समाप्त हो जाती है। जल से ही हमें फल-फूल, वनौषधियाँ व अन्नादि प्राप्त होते हैं -

---

42. अथर्ववेद, 3/13/6
43. शतपथ ब्राह्मण, 3/8/2/4
44. वही, 3/6/1/7
45. ऋग्वेद, 10/17/10

'आपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः'।।[46]

ऋषियों का बारम्बार आग्रह है कि जल औषधि है इसको अनावश्यक बर्बाद न करें। अथर्ववेद में महनीय जलों के आठ प्रकार बताये गये हैं। मन्त्र में यह कामना की गयी है कि ये आठों प्रकार के जल सबके लिए सुखदायक हो -

'शं तं आपो हेमवतीः शं तेसनतूत्स्याः।
शं ते सनिष्यदा आपः शं ते सन्तु वर्ष्या।।
शं तं आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः।
शं ते खनित्रिमा आपः शं कुम्भेभिराभृताः।।[47]

इन मन्त्रों में वर्णित-हैमवती :– हिमालय पर बर्फ के रूप में। उत्स्याः स्रोतों के रूप में। सनिष्यदाः - सदा बहने वाले। वर्ष्याः - बरसने वाले। धन्वन्याः - मरुस्थल के रूप में। अनूप्याः - जलाशय में रहने वाले। खनित्रिमा, भूमि को खोदकर प्राप्त तथा कुम्भेभिः आमृताः - धड़े में भरकर रखे गये। ये आठ प्रकार के जल किस रूप में प्रदूषण का निवारण करते हुए मानव के लिए सुखदायी होते हैं। इसको आज वैज्ञानिक परीक्षण द्वारा प्रमाणित करने की आवश्यकता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में यह भी वर्णन किया गया है कि नदियों में विष उत्पन्न हो गया है तो देवजन उसे मिलकर दूर कर लें। इस प्रकार नदियाँ प्रदूषण रहित हो जाय -

'यन्नदीषु-परि जायते विषम् यदोषधीभ्यः।
विश्वा दवा निरितस्तत् सुवन्तु
सर्वानद्यो अशिमिदा भवन्तु'।[48]

आज के नदियों की दशा पर भी यही प्रयास होना चाहिए। सभी लोग नदियों के विषैलेपन के लिए उत्तरदायी हैं। अतः सबको मिलकर नदियों की रक्षा करनी चाहिए। उनके अविरल प्रवाह को बहने दें। उपरोक्त सन्दर्भों से प्रमाणित हो

---

46. यजुर्वेद, 11/38
47. अथर्ववेद, 19/2/1–2
48. ऋग्वेद, 7/50/3–4

जाता है वैदिक ऋषियों को पर्यावरण के लिए जल के महत्त्व का ज्ञान था। उन्होंने जल के दोष निवारण के उपाय खोजने का प्रयास भी किया था और यथासम्भव उसकी शुद्धता पर भी प्रतिबद्ध थे। जल हमारे आस्था का विषय है। इसकी निर्दोषता का ध्यान सभी को देना चाहिए। धीरे-धीरे जल की शुद्धता नष्ट हो रही है जो जीवन के लिए अभिशाप बन सकती है। सम्पूर्ण मानव समाज को पर्यावरण के संरक्षण और सम्वर्धन के लिए समवेत रूप से जल के प्रवाह को सतत् निर्बाध गति से प्रवाहित होने तथा प्रदूषण मुक्त बनाये रखने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।

वेदों में 'यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म कहा गया है।[49] अर्थात् यज्ञ वह कर्म है जिससे सम्पूर्ण लोक का कल्याण होता है। जब से आर्य मानव गर्भ में होता है तभी से यज्ञ द्वारा संस्कृत होना प्रारम्भ हो जाता है। पुंसवन, सीमन्तोन्नयन संस्कार इसी क्रम के अन्तर्गत होते हैं। जन्म लेने पर जातकर्म संस्कार होता है। इस प्रकार यज्ञ द्वारा ही जीवन का लालन-पोषण होता है। 'छन्दोग्योपनिषद्' में आया है "पुरुषो वाव यज्ञः"[50] अर्थात् मनुष्य का जीवन एक यज्ञ है। यास्क के अनुसार "यज्ञ शब्द यजनार्थक हैं क्योंकि यज्ञ से किसी विशेष फल की याचना की जाती है या यजमान स्वयं ही देवताओं से वर्षादि की प्रार्थना करता है। इसीलिए इसे यज्ञ कहा जाता है।[51] यज्ञ में लोक-कल्याण की भावना होती है। यज्ञ शब्द का अर्थ है देव पूजा, संगति करना और दान। उसे विश्व कल्याण के लिए ही किया जाता है, पर्यावरण रक्षा के लिए किया जाता है। छान्दोग्योपनिषद् में यज्ञ के विषय में कहा गया है यह सब अशुद्धियों, दोषों (प्रदूषण) को नष्ट कर वायुमण्डल को शुद्ध करता है। अतः इसे यज्ञ कहा जाता है - "एष ह वै यज्ञो योऽयं पवते इदं सर्व पुनाति तस्मादेव एव यज्ञः।[52]

वस्तुतः यज्ञ शब्द कर्म अथवा कर्मकाण्ड का प्रतिपादक है। वह ऐसा कर्म है जिसमें देवता, हविर्द्रव्य, मन्त्र, ऋत्विक् और दक्षिणा इन पाँचों का संयोग होता है।[53] ये सभी पर्यावरण को शुद्ध करते हैं। यज्ञ के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले

---

49. ऋग्वेद, 1/12/1, 2/12/1, 10/9/13 पर सायण भाष्य ।

50. छान्दोग्योपनिषद्,

51. निरुक्त, 3/4/9, "यज्ञः कस्मात्? प्रख्यातं यजति कमेति नैरुक्ताः। यवन्यो भवतीति वा यजुर्भिरुन्नो भवतीति वा बहु कृष्णा जिन इतयोपमन्यवः यजूष्येन नयन्तीति वा।"

52. छान्दोग्योपनिषद्, 4/17/1

53. मत्स्यपुराण, 14/44

मन्त्र पृथ्वी, जल, वायु, आकाश को प्रदूषण मुक्त रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। यज्ञ ही वह विधि है जिसके द्वारा प्राकृतिक संतुलन बनाया रखा जा सकता है। यज्ञ के द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा, वायुमण्डल की पवित्रता, विविध रोगों का नाश, शारीरिक और मानसिक उन्नति तथा रोग निवारण के कारण दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है।[54] वास्तव में यज्ञ एक भावना है। भावना में पवित्रता का वास होता है। डॉ. कृष्णलाल का भी यही मानना है कि 'अग्नि में आहुतियाँ अर्पित करने का नाम केवल यज्ञ नहीं हैं अपितु यज्ञ एक भावना है जो समस्त पर्यावरण को प्रभावित करती है, सुवासित करती है'।[55] इसीलिए वैदिक कालीन समाज में सभी कार्य यज्ञ से प्रारम्भ होता था। ऋषिगण यज्ञों के अनुष्ठान से पर्यावरण को पूर्णतः संरक्षित एवं संतुलित रखते थे। प्रकृति के सुरम्य और संतुलित वातावरण में ही वैदिक साहित्य का सृजन सम्भव हो पाया, जो विश्व वाङ्मय की अमूल्य धरोहर है।

यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वायुमण्डल में आक्सीजन और कार्बन डाई आक्साइड का संतुलन बना रहता है। इसमें आहुति दिये गए सुगन्धित पदार्थ दुर्गन्ध नष्ट करते हैं। प्रसिद्ध रसायनशास्त्री डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश ने अपनी पुस्तक 'अग्निहोत्र' में लिखा है कि यज्ञ में कुछ ऐसे तत्त्व हैं जिनसे फार्मेल्डीहाइड गैस उत्पन्न होती है। यह बिना परिवर्तन हुए वायुमण्डल में फैल जाती है। कुछ अंश तक कार्बनडाई-आक्साइड गैस भी फार्मेल्डीहाइड में परिवर्तित हो जाती है'।[56] यही यज्ञ का वैशिष्ट्य है। इसमें आहुति दिये गये सुगन्धित पदार्थ दुर्गन्ध नष्ट करते हैं और औषधियाँ पर्यावरण के कीटाणुओं को नष्ट करती है। अथर्ववेद में अनेक कीटाणु या कृमियों के नाम का वर्णन आया है, जो श्वास, वायु, भोजन, जल आदि के द्वारा शरीर में प्रवेश कर शरीर को रोगी बनाते हैं। शरीर के मांस को खाना प्रारम्भ कर देते हैं। अतः इनसे मनुष्य की रक्षा होनी चाहिए। यज्ञ के द्वारा अग्नि में कृमि विनाशक औषधियों की आहुति देकर रोग कृमियों को समाप्त किया जाता है -

---

54. द्विवेदी कपिलदेव, वेदों में विज्ञान, विश्व भारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (भदोही) उ. प्र. 2004, पृ0-274

55. वही, पृ0 - 274

56. लाल डॉ. कृष्ण, वैदिक वाङ्मय-विश्लेषण, जे.पी. पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली 1993, पृ0-134

'इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत्।
य इदं स्त्री पुमानकः इह स स्तुवतां जनः'।।[57]

यज्ञ में कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, चन्दन, जायफल, इलायची, जावित्री आदि से वायुमण्डल शुद्ध होता है। आम, गूलर, पीपल, शमी, पलाश, बड़ वेल आदि की समिधाएं यज्ञ कुण्ड में जलने से कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा घटती है। अथर्ववेद में आया है कि यज्ञ में प्रयुक्त हुआ घी वायु प्रदूषण को दूर करने का सर्वोत्तम् साधन है।[58] घृत के अतिरिक्त दूध, फल, कन्द-मूल, जौ, चावल, उड़द, तिल आदि से यज्ञ में आहुति दिये जाने पर पर्यावरण में पुष्ट वायु का जन्म होता है। इसी से निकले धूम से ओजोन परत को सशक्त बनाया जा सकता है, जिसे आज के वैज्ञानिक भी मान चुके हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती यज्ञ के उद्देश्य को बतलाते हुए अग्नि और हवा के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। वे कहते हैं "जब यज्ञ होता है तो अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, जिसमें यज्ञ रूप श्रेष्ठ कर्म अनुष्ठित होता है और उसमें उत्तम हवि की आहुतियाँ दी जाती हैं, जिससे वातावरण सुगन्धित होता है।[59] इस प्रकार सुगन्धिकारक, पुष्टिकारक और वृद्धिकारक पदार्थों से यज्ञ करने पर पर्यावरण–प्रदूषण समाप्त होता है।

यज्ञ से वनस्पतियों की रक्षा होती है। यजमान यज्ञ के समय प्रतिज्ञा करता है "पृथ्वी पर स्थित औषधि के मूल को समाप्त न करूं।[60] यह बात पर्यावरण संरक्षण को संज्ञान में रखकर ही कही गयी हैं। पर्यावरण पूजा के लिए एक छोटी सी घास का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। कालिदास भी शकुन्तला को पुष्पप्रिय होते हुए भी उन्हें न तोड़ने का सलाह देते हैं।[61] यज्ञ पवित्रता का प्रतीक है। यज्ञ स्थल का लेपन कर पवित्र बनाया जाता है। यज्ञ में प्रार्थना की जाती है कि पृथ्वी पर द्युलोक से वर्षा हो।[62] इस प्रकार यज्ञ शुद्धि द्वारा ठीक समय पर उचित परिमाण में वर्षा

57. अथर्ववेद, 1/8
58. वही, 6/32/1
59. लाल डॉ. कृष्ण, वैदिक वाङ्मय-विश्लेषण, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, 1993, पृष्ठ-134
60. शुक्लयजुर्वेद, वाजसनेयी संहिता 1/25 'पृथिवि देवजयन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषम्'।
61. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/11
62. शुक्ल्यजुर्वेद, 1/25-26, सिषं व्रजं गोष्ठानं वर्षतु ते द्योर्बधान।

करवाने का विधान किया गया है। यज्ञ एक दैवी प्रक्रिया है। इसी के द्वारा सृष्टि के प्रत्येक कण में नित्य परिवर्तन हो रहा है और सृष्टि भी अबाधगति से चल रही है। इसीलिए यजुर्वेद में कहा गया है कि यज्ञ सृष्टि चक्र का केन्द्र है - "अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।[63] इस प्रक्रिया को परिभाषित करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि यज्ञ के द्वारा द्युलोक को प्रसन्न किया जाता है और द्युलोक वर्षा के द्वारा पृथ्वी को प्रसन्न करता है। इस प्रकार यज्ञ से बादल और बादल से वर्षा होती है - "भूमि पर्जन्या जिन्वन्ति, दिवं जिन्वतत्यग्नयः।[64] भगवान् श्रीकृष्ण भी यही बात श्रीमद्भगवतगीता में कहते हैं। यज्ञ के द्वारा देवों को प्रसन्न करो और देवता तुम्हें वर्षा से प्रसन्न करें।[65] अच्छी वर्षा होने पर ही अच्छी कृषि सम्भव है। अच्छी कृषि होने पर ही मनुष्य का जीवन सम्भव है, इसीलिए जल ही जीवन का मूल आधार है, जल ही जीवन है।

जल और अन्य यज्ञ उपकरणों से शुद्ध रखने के लिए यज्ञ में प्रतिज्ञा की जाती है।[66] हम पर्यावरण सन्तुलन के सन्दर्भ में महाकवि भवभूति कृत उत्तररामचरित के एक दृश्य का उल्लेख करना चाहते हैं जहाँ भवभूति ने संन्यासियों के लिए लिखा है कि "यहीं पवित्र नदियों के तट पर वानप्रस्थियों द्वारा सेवित वृक्षों वाला तपोवन दृष्टिगोचर हो रहा है।[67] यहाँ नदी के तट पर और वृक्ष की छाया में ही बैठकर ऋषि लोग आत्मचिंतन किया करते हैं। जल और वृक्ष के रम्य वातावरण को एक साथ प्रस्तुत कर कवि ने पर्यावरण संतुलन की मनोहरता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। पर्यावरण संतुलन के लिए जल का शुद्ध होना नितान्त आवश्यक है। डॉ. प्रतिभा आर्य लिखती हैं "वायु के शुद्ध होने पर ही जल भी शुद्ध होता है।[68] इस प्रकार यज्ञ के द्वारा जल के संशुद्धिकरण पर विशेष बल दिया गया है जो पर्यावरण चेतना का परिचायक है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यज्ञ का महत्त्व अतिविस्तार

63. यजुर्वेद, 23/62

64. ऋग्वेद, 1/164/51

65. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/11

66. शुक्लयजुर्वेद वाजसनेयी संहिता, 1/15

67. उत्तररामचरितम्, साहित्य भण्डार, मेरठ, 2004, 1/25

68. अभिनन्दन भारती एवं संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण, विश्व भारतीय अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (भदोही) उ.प्र., 2004, पृ0 - 217

से प्रतिपादित है। यज्ञ सम्पूर्ण जीवों का रक्षक है। इसीलिए इसको भुज्जु कहा गया है। यज्ञ जीवन को सुरक्षा प्रदान करता है। यह ऋतु संधियों के संक्रमण वाले रोगों से रक्षा करता है। भैषज्य यज्ञ रोगों के साथ ही विविध प्रदूषणों को दूर करते हैं। यज्ञ प्रदूषण को दूर करके वायुमण्डल को पवित्र बनाता है। यज्ञ के द्वारा एक स्थान पर इकट्ठा वायु गर्म होने पर हल्की होकर अन्यत्र चली जाती है। जिससे वायु का स्थान परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार दूरस्थ शुद्ध वायु के आने पर पर्यावरण शुद्ध रहता है।

इस प्रकार हम विवेचनोपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यज्ञ प्रकृति की पूजा का एक माध्यम है। इससे विश्व का कल्याण होता है और विश्वनियन्ता परमात्मा प्रसन्न होते हैं। विश्वव्याप्त प्रदूषित पर्यावरण का समाधान यज्ञ ही है। पर्यावरण का सबसे समीपवर्ती सम्बन्ध जल, वनस्पतियों और वायु से है। जिन्हें यज्ञों द्वारा स्वस्थ रखने की सर्वत्र प्रतिज्ञा की गयी है। इनके स्वस्थ होने पर ही पर्यावरण भी स्वस्थ होगा क्योंकि वृक्ष, वनस्पतियाँ, जल, वायु ही पर्यावरण के विशेष घटक हैं। वैदिक ऋषि इनमें देवदर्शन करता हुआ इनका मंगलगान करता है। इन प्राकृतिक तत्त्वों में दैवीभाव रखकर ही हम पर्यावरण का समुचित संरक्षण एवं संवर्धन करने में समर्थ हो सकते हैं। भारतीय संस्कृति में सम्पूर्ण सृष्टि को ईश्वरस्वरूप मानकर कण-कण में शिवत्वभाव का दर्शन किया जाता है।

अध्याय-2

आर्ष-काव्यों में पर्यावरण का दैव स्वरूप

संस्कृत वाङ्मय में आर्ष-काव्यों का विशेष महत्त्व है। इनकी उपजीव्यता से ही संस्कृत वाङ्मय समृद्ध हुआ है। रामायण, महाभारत और पुराण आर्ष-काव्य कहे जाते हैं। इन काव्यों के सृष्टिकर्त्ता ऋषि थे। ऋषियों द्वारा प्रणीत काव्य को आर्ष-काव्य और प्रणेता को आर्ष कवि कहा जाता है। आर्ष कवि भूत, भविष्य और वर्तमान की समस्त घटनाओं को अपनी प्रज्ञाशक्ति से हस्तामलकवत् कर देता है। भविष्य में आने वाली समस्याओं को वह अपने दिव्य चक्षु से देखकर उसके समाधान के बीज को अपने काव्यों में उल्लिखित कर देता है। आज पर्यावरण प्रदूषित हो चुका है, हवा और पानी का संकट उत्पन्न हो गया है। हमारे ऋषियों को इस तथ्य का पहले ही भान हो चुका था। इसीलिए वे प्रकृति में देवत्त्व का सन्देश दिये। भारतीय परम्परा में धर्म जीवन का आधार स्तम्भ है। अतः किसी को धर्म से जोड़ देने पर उसमें आस्था, विश्वास और श्रद्धा स्वतः उत्पन्न हो जाती है। वायु, जल, वृक्ष एवं वनस्पति में देवत्त्व भाव से उनके प्रति स्वतः अनुराग का जन्म हो जाता है। हम इन्हें देवस्वरूप क्यों माने? इसका उत्तर भी बहुत सहज है, जो बिना मुझसे कुछ ग्रहण किये, मेरा परम कल्याण करे वह ईश्वर ही है। वह विशेष पुरुष है।

वाल्मीकीय रामायण का आर्ष-काव्यों में अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें अनेक स्थलों पर पर्यावरणीय तत्त्वों पर कवि आकृष्ट हुआ दिखलाई पड़ता है। वृक्षों को पूजनीय और शोभादायक माना गया है। सीता जी वनगमन काल में वृक्षों के प्रति आस्था प्रकट की हैं। यमुना नदी के पार उतरकर वन में प्रस्थान करके वे हरे-भरे पत्तो से सुशोभित शीतल छाया वाले श्याम वट के पास जब पहुँची हैं तब अपने पति और परिवार की कुशलता के लिये प्रार्थना करती हैं -

'न्यग्रोधं समुपागय वैदेही चाभ्यवन्दत।
नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिव्रतम्'।।

कौसल्यां चैव पश्येम सुमित्रा च यशस्विनीम्।
इति सीताञ्जलिं कृत्वा पर्यगच्छन्मनस्विनी'।।[1]

अर्थात् वट वृक्ष के समीप विदेहनन्दिनी सीता ने अपना मस्तक झुकाया और इस प्रकार कहा - हे महावृक्ष आपको नमस्कार है। आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे पतिदेव अपने वनवास विषयक व्रत को पूर्ण करें तथा हम लोग वन से सकुशल लौटकर माता कौशल्या तथा यशस्विनी सुमित्रा देवी का दर्शन कर सकें। इस प्रकार कहकर मनस्विनी सीता ने हाथ जोड़े हुए उस वृक्ष की परिक्रमा की। यहाँ वट वृक्ष को महावृक्ष कहा गया है। आज भी वट वृक्ष की पूजा और परिक्रमा मनोकामना पूर्ण होने के लिए की जाती है। वृक्ष और वनस्पतियाँ सामान्य नही हैं। ये हमारे जीवन में हर्षोल्लास पैदा करने वाले होते हैं। जब हम हरे-भरे वनस्पतियों को देखते हैं, तो मेरा विषाद युक्त मन भी आनन्दित हो ज़ाता है। राम वन में एक रमणीय स्थल को देखकर कहते हैं कि वन का यह भाग बड़ा ही रमणीय है, यहाँ फूलों की वर्षा सी हो रही है और सारी भूमि पुष्पों से आच्छादित दिखायी दे रही है। इस वनप्रान्त में यह चातक 'पी कहाँ' की रट लगा रहा है। उधर वह मोर बोल रहा है। मानो पपीहे की बात का उत्तर दे रहा है। तात! जहाँ, की भूमि समतल है और जो बहुत से वृक्षों से भरी हुई है। उस चित्रकूट के पवित्र कानन में हम लोग बड़े आनन्द से विचरेंगे -

'एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति।
रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंस्तरसंकटे।।
समभूमितले रम्ये द्रुमैर्वहुभिरावृते।
पुण्ये रंस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने'।[2]

स्थलों की पवित्रता वृक्षों के होने पर ही होती है। क्योंकि वृक्ष प्रदूषण का अवशोषण करते हैं। वृक्ष मानव के लिए पवित्र वायु संरक्षित करते हैं। वनों में अनेक प्रकार के पशु-पक्षी रहा करते हैं। चित्रकूट पर्वत को अनेक पशुओं से भरा बतलाया गया है -

---

1. रामायण, अयोध्या काण्ड, 55/24–25
2. वही, 56/9,11

'नानामृगगणैर्दीपितरक्ष्वृक्षगणैर्वृतः।
अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहुपक्षिसमाकुलः'।।[3]

अर्थात् चित्रकूट पर्वत बहुसंख्यक पक्षियों से व्याप्त है तथा नाना प्रकार के मृगों बड़े-बड़े व्याघ्रों और रीछों से भरा हुआ है। वे व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु अपने दुष्ट स्वभाव का परित्याग करके यहाँ रहते हैं और इस पर्वत की शोभा बढ़ाते हैं। वनों की शोभा वृक्षों-वनस्पतियों के साथ-साथ जङ्गली जानवरों में भी देखी जाती है। यहाँ अनेक प्रकार के वृक्ष थे। वे वृक्ष भोजन के साथ-साथ पर्यावरण के लिए भी विशेष महत्त्व रखते हैं -

'आम्रजम्ब्वसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः।
अङ्कोलैर्भव्यतिनिशैर्विल्वतिन्दुकवेणुभिः।।
काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि।
वदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्रधन्वनबीजकैः।
पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावद्भिर्मनोरमैः।
एवमादिभिराकीर्णः श्रियं पुष्पत्ययं गिरिः'।[4]

अर्थात् आम, जामुन, असन, लोध, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल, भव्यत्रिनिश, बेल, तिन्दुक, बाँस, काश्मरी, अरिष्ट (नीम), बरंण, महुआ, तिलका, बैर, आवला, कदम्ब, वेत, धन्वन, बीजक (अनार) आदि घनी छाया वाले वृक्षों से जो फूलों और फलों से लदे होने के कारण मनोरम प्रतीत होते थे, पुष्पों से व्याप्त हुआ यह पर्वत अनुपम शोभा का पोषण एवं विस्तार कर रहा है। पंचवटी पहुँचने पर राम ने लक्ष्मण को वन के साथ-साथ जल वाले स्थान को निवास करने के लिए उत्तम बताया है-

'रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण।
तादृशो दृश्यतां देशः संनिकृष्टजलाशयः।।
वनरामण्यकं यत्र जलरामण्यकं तथा।
संनिकृष्टं च यस्मिंस्तु समित्पुष्पकुशोदकम्'।।[5]

3. रामायण, अयोध्या काण्ड, 94/7
4. वही, 94/8–10
5. वही. अरण्यकाण्ड. 5/4–5

जीवन के लिए वृक्ष और जल की महती आवश्यकता होती है। वृक्षों से शुद्ध वायु की स्वाभाविकता बनी रहती है। भगवान् राम वृक्षों के प्रति मानवीय व्यवहार करने वाले हैं। सीता की खोज में वे वृक्षों-वनस्पतियों, पशु-पक्षियों से उनके सम्बन्ध में पूछ रहे हैं। राम अत्यन्त विकल हैं। वृक्षों और पशुओं से मानवीय व्यवहार कर रहे हैं। यहाँ राम का सन्देश यही है कि ये सामान्य नही हैं। इन्हें भी हर्ष-विषाद की अनुभूति होती है। इनके प्रति दया और स्नेह रखना चाहिए। भगवान् राम जब किष्किन्धा पर्वत पर पहुँचते हैं, तो वहाँ भी वृक्षों, वनस्पतियों, सरोवर एवं पक्षियों की शोभा देखकर अतिप्रसन्न हो जाते हैं -

'ते वीक्षमाणा वृक्षांश्च पुष्पभारावलम्बिनः।
प्रसन्नाम्बुवहाश्चैव सरितः सागरंगमा।।
कन्दराणि च शैलांश्च निर्दराणि गुहास्तथा।
शिखराणि च मुख्यानि दरीश्च प्रियदर्शनाः।
वैदूर्यविमलैस्तोयैः पद्मैश्चाकोशकुड्मलैः।
शोभितान् सजलान् मार्गे तटाकांश्चावलोकयन्'।।[6]

इस वर्णन से प्रकृति की प्रियता स्वतः झलकती है। वृक्षों में दिव्यगुण पाये जाते हैं। ये औषधि स्वरूप माने गये हैं। राम, लक्ष्मण के घायल होने पर वनौषधि की सुगन्ध से ही वे स्वस्थ हो जाते हैं।

'तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ तं गन्धभाघ्राय महौषधीनाम्
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यावुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः।।
सर्वे विशल्या विरुजाः क्षणेन हरिप्रवीराश्च हताश्च ये स्युः।
गन्धेन तासां प्रवरौषधीनां सुप्ता निशान्तेष्विव सम्प्रबुद्धाः'।।[7]

औषधि की गंध से राम और लक्ष्मण दोनों स्वस्थ हो जाते हैं। उनके शरीर से बाण निकल गये और घाव भर गये। इसी प्रकार जो अन्य प्रमुख बानर वीर वहाँ हताहत हुए थे वे सब के सब उन श्रेष्ठ औषधियों की सुगन्ध से रात

---

6. रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 13/5–7
7. वही, युद्धकाण्ड 74/73–74

के अन्त तक सोकर उठे हुए प्राणियों की भाँति क्षणभर में नीरोग हो उठकर खड़े हो गये। उनके शरीर से बाण निकल गये और उनकी सारी पीड़ा समाप्त हो गयी। इस प्रकार हम देखते हैं कि वृक्षों में विशेष गुण होता है। जो हमें वायु और स्वास्थ्य दोनों प्रदान करते हैं। इनके प्रति हमें आदर रखना होगा। तभी इनकी स्थिति बनी रहेगी। ये दैव स्वरूप हैं, इनकी कृपा पर ही हमारा जीवन अवलम्बित है। स्कन्दपुराण में पीपल को भगवान् विष्णु के समान बतलाया गया है। किन्तु उसमें यह विश्वास भी व्यक्त किया गया है कि परमात्मा भिन्न-भिन्न स्वरूपों में प्रायः सभी वृक्षों में विद्यमान हैं-

पार्वती विल्व वृक्षस्थां लक्ष्मी च तुलसीगताम्।

आदौ सर्ववृक्षमयं पूर्व विश्वमजायत।।[8]

अर्थात् सृष्टि के समय में मैं (ईश्वर) समस्त पेड़-पौधे में विद्यमान रहा हूँ किन्तु देवी पार्वती विल्व (बेल) में तथा देवी लक्ष्मी तुलसी में निवास करती हैं। पद्मपुराण में एक वर्णन प्राप्त होता है कि जिसके घर में तुलसी का पौधा रहता है, उसके घर के निवासी भाग्यशाली होते हैं।[9] ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है कि जिस स्थान पर तुलसी का पौधा लगाया गया है वह स्थान पवित्र प्रायः देवताओं का निवास स्थल माना जाता है।[10] हिन्दू परिवारों में आज भी तुलसी की पूजा इसी आस्था और विश्वास के साथ की जाती है कि यह मंगल दायक है। वाराहपुराण में वनरोपण महोत्सव मनाये जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है -

'अश्वत्थमेकं पिचुमर्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशपुष्पजातीः।

द्वे द्वे तथा दाडिममातुलिङ्गे पंचाम्ररोपी नरकं न याति'।।[11]

अर्थात् जो कोई एक पीपल, एक नीम, एक बड़, दश फूलो के पौधे, लताएं, दो अनार, दो नारंगी और पाँच आम का वृक्ष लगाता हैं वह नरक में नहीं जाता है। इस प्रकार वृक्षारोपण करने पर अगाध पुण्य की प्राप्ति होती है। किये गये सभी पाप मिट जाते हैं। अतः वृक्षों की सेवा करनी चाहिए। उनके कटान को रोकना

8. स्कन्दपुराण, 15/21
9. पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, 59/7
10. ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड, 21/37
11. वाराहपुराण, 172/36

हमारा धर्म है। वृक्ष हमारे आस्था के प्रतीक हैं। ये स्वास्थ्य वर्धक के साथ-साथ मन को स्फूर्ति प्रदान करने वाले हैं। वनों के विनाश से वन्य जीवों का विनाश हो जाता है। वन, वृक्ष-वनस्पतियों, पशु और पक्षियों से मिलकर बना रहता है। सबका आपस में सम्बन्ध है। इसमें से किसी एक के अभाव में प्रकृति अपङ्ग हो जायेगी। इसलिए वनों के प्रति संरक्षण भाव से ही ऋषियों ने स्वतः भूमि पर गिरे कंद-मूल से ही अपना जीवन निर्वाह करते थे। अपने भोजन के लिए ऋषि वृक्ष को रंचमात्र भी कष्ट देना नही चाहते थे। वनस्पतियों की इसी परम्परा को हनुमान जी कह रहे हैं -

'हस्तादानो मुखादानो नियतो वृक्षमूलिकः।
वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम्'।।[12]

अर्थात् जानकी जी का दर्शन न मिलने पर मैं यहाँ वानप्रस्थी हो जाउँगा। मेरे हाथ पर अपने आप जो फल आदि खाद्य वस्तु प्राप्त हो जायेगी, उसी को खाकर रहुँगा या परेच्छा से मेरे मुँह में जो फल आदि खाद्य वस्तु पड़ जायेंगी उसी से निर्वाह करुँगा तथा शौच, सन्तोष आदि नियमों का पालन करते हुए वृक्षों के नीचे निवास करुँगा। वृक्ष केवल प्रकृति की सुषमा नही अपितु प्राण वायु के पोषक हैं। इन्ही से वायु शुद्ध होती है। सुगन्धित वायु के सन्दर्भ में वाल्मीकि जी कहते हैं -

'गुहासमीरणो गन्धान नानापुष्पभवान् बहून।
घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं न प्रहर्षयेत'।।[13]

अर्थात् गुफाओं से निकली हुई वायु नाना प्रकार के पुष्पों की प्रचुर गन्ध लेकर नासिका को तृप्त करती हुई किस पुरुष के पास आकर उसका हर्ष नहीं बढ़ाती। वायु सबके मन को रञ्जित करती है। वायु से ही वर्षा होती है। वर्षा समृद्धि का प्रतीक है। जल जीवन का अविभाज्य अङ्ग है। नदियाँ हमारी आस्था की प्रतीक हैं। इनको प्रदूषित नहीं करना चाहिए। इन्हें मंगलमय कामना को पूर्ण करने वाला बताया गया है। सीता जी यमुना के बीच धारा में आने पर उन्हें प्रणाम करके कहती हैं कि हे देवी इस बेड़े द्वारा मैं आपके पार जा रही हूँ, आप ऐसी कृपा करें, जिससे हम लोग सकुशल पार हो जायँ और मेरे पति देव अपनी वनवास विषयक प्रतिज्ञा

---

12. रामायण, सुन्दरकाण्ड, 13/40
13. वही, अयोध्याकाण्ड, 94/14

को निर्विघ्न पूर्ण करें। इक्ष्वाकुवंशी वीरों द्वारा पालित अयोध्यापुरी में श्री रघुनाथ जी के सकुशल लौट आने पर मैं आपके किनारे एक सहस्र गायों को दान करुँगी और सैकड़ों देवदुर्लभ पदार्थ अर्पित कर आप की पूजा सम्पन्न करुँगी -

'कालिन्दीमध्यमायाता सीता त्वेनामवन्दत।
स्वस्ति देवी तरामि त्वां पारयेन्मे पतिर्व्रतम्।।
यक्ष्ये त्वां गोसहस्रेण सुराघटशतेन च।
स्वस्ति प्रत्यागते रामे पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम्'।।[14]

ये नदियाँ केवल जल नही हैं, बल्कि हमारे तीर्थ हैं। इनका जल अमृत स्वरूप है। इनमें दैवी वास है। ये हमारी पूजनीय हैं। राम गङ्गा पार होते समय शास्त्रविधि के अनुसार आचमन करके सीता के साथ उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर गङ्गा जी को प्रणाम किया। महारथी लक्ष्मण ने भी इन्हें मस्तक झुकाया -

'आचम्य च यथाशास्त्रं नदी तां सह सीतया।
प्रणमत्प्रीतिसंतुष्टो लक्ष्मणश्च महारथः'।।[15]

जानकी जी भी स्त्री स्वभाव के अनुरूप ही गङ्गा की पूजा और मङ्गल हेतु अनेक विधि से संकल्प करती हैं। जिसका वर्णन करना प्रासंगिक होगा -

'पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः।
निदेशं पालयत्वेनं गङ्गे त्वदिभिरक्षितः'।।[16]

देवी गङ्गे! ये परम बुद्धिमान महाराज दशरथ के पुत्र हैं और पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए वन में जा रहे हैं। यह आप से सुरक्षित होकर पिता की इस आज्ञा का पालन कर सके, ऐसी कृपा कीजिए। और भी -

'चतुर्दश हि वर्षाणि समग्राण्यष्य काननेे।
भ्रात्रा सह मया चैव पुनः प्रत्यागमिष्यति'।।[17]

---

14. रामायण, अयोध्या काण्ड, 55/19–20
15. वही, 52/79
16. वही, 52/83
17. वही, 52/84

वन में पूरे चौदह वर्षों तक निवास करके ये मेरे तथा अपने भाई के साथ पुनः अयोध्यापुरी को लौटेंगे। और भी -

'ततस्त्वां देवी सुभगे क्षेमेण पुनरागता।

यक्ष्ये प्रमुदिता गङ्गे सर्वकामसमृद्धिनी'।।[18]

सौभाग्यशालिनी देवी गङ्गे! उस समय वन से पुनः कुशलपुर्वक लौटने पर सम्पूर्ण मनोरथों से सम्पन्न हुई मैं बड़ी प्रसन्नता पूर्वक आपकी पूजा करुँगी। और भी -

'त्वं हि त्रिपथगे देवी ब्रह्मलोकं समक्षसे।

भार्या चोदधिराजस्य लोकेऽस्मिन् सम्प्रदृष्यसे'।।[19]

स्वर्ग, भूतल और पाताल - तीनों भागों पर विचरने वाली देवी! तुम यहाँ से ब्रह्मलोक तक फैली हुई हो और इस लोक में समुद्रराज की पत्नी के रूप में दिखायी देती हो। और भी -

'सा त्वां देवि नमस्यामि प्रंशसामि च शोमने।

प्राप्तराज्ये नरव्याघ्र शिवेन पुनरागते'।।[20]

शोभा शालिनी देवी गङ्गे! पुरुषसिंह श्रीराम जब पुनः वन से सकुशल लौटकर अपना राज्य लेंगे तब मैं सीता पुनः आपकी स्तुति करुँगी और मस्तक झुकाउँगी। और भी -

'गवां शतसहस्रं च वस्त्राण्यन्नं च पेशलम्।

ब्रह्मणेभ्यः प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया'।।[21]

इतना ही नही मै आपको प्रिय करने की इच्छा से ब्राह्मणों को एक लाख गौएँ, बहुत से वस्त्र तथा उत्तमोत्तम् अन्न प्रदान करुँगी। और भी -

'सुराघटसहस्रेण मांसभूतौदनेन च।

यक्ष्ये त्वां प्रीयतां देवी पुरीं पुनरुपागता'।।[22]

---

18. वही, 52/85
19. वही, 52/86
20. वही, 52/87
21. वही, 52/88
22. वही, 52/89

देवी! पुनः अयोध्यापुरी में लौटकर मैं सहस्रों देवदुर्लभ पदार्थों से तथा राजकीय भाग से रहित पृथ्वी, वस्त्र और अन्न के द्वारा भी आपकी पूजा करुँगी। आप मुझपर प्रसन्न हों। और भी -

'यानि त्वत्तीरवासीनि दैवतानि च सन्ति हि।
तानि सर्वाणि यक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च'।।[23]

आपके किनारे जो-जो देवता तीर्थ और मन्दिर हैं उन सबका मैं पूजन करुंगी। और भी -

'पुनरेव महाबाहुर्मया भ्रात्रा च संगतः।
अयोध्यां वनवासात् तु प्रविशत्वनघोऽनघे'।।[24]

हे निष्पाप गङ्गे! ये महाबाहु पापरहित मेरे पतिदेव हमारे तथा अपने भाई के साथ वनवास से लौटकर पुनः अयोध्या नगरी में प्रवेश करें। इस बहुबिध प्रतिज्ञा से ज्ञात होता है कि नदियाँ हमारी आस्था की केन्द्र बिन्दु हैं। रामायण में सभी दैवी शक्तियों का स्तवन किया गया है। इस प्रकार पर्यावरण के संरक्षण प्रति दैवी भाव ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। क्योंकि जिसे हमें साक्षात् देवता या देवता का प्रतिनिधि मानकर उपासना करते हैं। उसे काटे जाने की बात अकल्पनीय है। ऐसे ही जल को भी देवत्त्व प्रदान किया गया है। नदियाँ मातृत्व का श्रेष्ठ अभिधान करने वाली हैं। पृथ्वी हमारी माँ है। इसका संरक्षण करना हमारा परम कर्त्तव्य है। वायु महान् शक्ति प्रदाता है। आकाश सब कुछ संरक्षित करने का सामर्थ रखता है। इस प्रकार सम्पूर्ण पंचभौतिक तत्त्वों से हमारा पर्यावरण सन्तुलित रहता है।

महाभारत पर्यावरण-संरक्षण का आधार-स्तम्भ है। प्रकृति-पूजा से सम्पूर्ण महाभारत मण्डित है। पर्यावरण की मूल इकाई प्रकृति है और पर्यावरण संरक्षण ही प्रकृति-पूजा स्थायी भाव है। पर्यावरण मनुष्य के परितः रहने वाला वह आवरण है जो सदैव उसकी रक्षा करता है। उसका पौरुष साकार करता है। संरक्षित पर्यावरण से ही शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के रोगों से मुक्ति मिलती है। महाभारत में सभी पर्यावरणीय घटकों पृथ्वी, जल, वृक्ष, पर्वत, पहाड़, नदी, तालाब, सागर,

---

23. रामायण, अयोध्या काण्ड, 52/90
24. वही, 52/91

आकाश, तारा, नक्षत्र, आदि में देवत्त्व दृष्टिगोचर होता है। देवत्त्व का संज्ञान ही इन पर्यावरण घटकों को पूर्ण रूप से संरक्षित करने का निर्देश करता है।

भारतीय चिन्तन परम्परा में पर्यावरण सन्तुलन की अवधारणा उतनी ही पुरातन है जितना मानव सृष्टि का इतिहास। 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः'[25], वसुन्धरा पालने-पोषने वाली माँ है। हम सब उसके पुत्र हैं। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त के द्रष्टा ऋषि ने सहस्रों वर्ष पूर्व पर्यावरण संरक्षण के निमित्त सम्पूर्ण प्रकृति को देवरूप में स्तुत किया था। प्रकृति में देवत्त्व भाव पर्यावरण सन्तुलन की महत्त्वपूर्ण भावना है। भारतीय संस्कृति में धर्म का प्रभाव अत्यधिक है, इसलिए किसी कार्य को धर्म और आस्था से जोड़ देने पर उसके प्रति धार्मिक भावना का स्वतः जन्म हो जाता है। पर्यावरण संरक्षण मनुष्य के लिए नैतिक कर्त्तव्य बन जाता हैं। मनुष्य ही नही हमारे पर्यावरण का प्रत्येक चर-अचर जीव-जन्तु प्रकृति से इस प्रकार सम्पृक्त हैं कि बिना पर्यावरण सन्तुलन के जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

पर्यावरण संरक्षण के सन्दर्भ में उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी के चार्ल्स डार्विन, जगदीशचन्द्र बसु आदि जैसे विश्वविख्यात् अनुसंधानकर्त्ताओं ने वनस्पति एवं प्राणि जगत् का गहन अध्ययन करके जो जानकारियाँ प्राप्त की थी। उन सबका ज्ञान ऋषियों-मुनियों को प्राचीन काल में ही था। वेदव्यास पेड़-पौधों में देवत्त्व की भावना प्रतिष्ठित करके पर्यावरण संरक्षण हेतु सतत् प्रयत्नशील दृष्टिगोचर होते हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व में भगवान् विष्णु को समुद्र में तप करने वाला बताया गया है।[26] विष्णुपुराण में भी इन्हें जलाशयी कहा गया हैं।[27] जिस जल में भगवान् विष्णु के वास की भावना को मूर्त रूप दिया गया है। उसे शुद्ध रखने के लिए हमारी धार्मिक भावना बाध्य कर देती है। सभी रस जल से बने हैं। वस्तुतः समस्त जगत् ही जलमय है।[28] मनुष्य के शरीर में भी 70% भाग जल का ही है। महाभारत में मानव और उसके पर्यावरण के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध का वर्णन किया गया है। समस्त पर्यावरण में एक ही परमात्म रूप विद्यमान है। सभी प्राणी उसी से अनुप्राणित हैं। महाभारत के भीष्मपर्व से संकलित भारतीय संस्कृति की मणि

25. अथर्ववेद, पृथ्वी सूक्त, 12/1/12
26. महाभारत, अनुशासन पर्व, 6/18
27. विष्णुपुराण, 4/3/7
28. महाभारत, आदि पर्व, 171/18

पंचरत्नों में प्रमुख गीता में भगवान् कृष्ण स्वयं को प्राकृतिक शक्तियों का अधिष्ठाता कहा है -

'रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।।
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु'।।[29]

अर्थात् हे अर्जुन! मैं जल में रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदों में ओंकार हूँ, आकाश में शब्द हूँ और पुरुषों में पुरूषत्व हूँ। मैं ही पृथ्वी में पवित्र गंध और अग्नि में तेज हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन हूँ और तपस्वियों में तप हूँ। इसी अध्याय में स्वयं को कृष्ण शाश्वत बताते हुए कहते हैं -

'बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।।
बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्मा विरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ'।।[30]

अर्थात् हे अर्जुन! तुम सम्पूर्ण भूतों का सनातन बीज मुझको ही जान। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ। मैं ही बलवानों का आसक्ति और कामनाओं से रहित बल अर्थात् सामर्थ्य हूँ और सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्र के अनुकूल काम हूँ। गीता के इन सन्दर्भों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सम्पूर्ण प्रपंचात्मक जगत् ईश्वर का रूप है। सृष्टि के कण-कण का संरक्षण ही ईश्वर की सेवा है। इस ईश्वर सेवा का फल पर्यावरण संरक्षण है। पर्यावरण सन्तुलन स्वस्थ जीवन का प्रतीक है। महाभारत में कहा गया है कि जलपायी, वायुभक्षक, फलाहारी, व्रतधारी दुर्बल विप्र ही ब्रह्मतेज से बलिष्ठ होते हैं -

'अव्यक्षा वायुभक्षाश्च फलाहारा दृष्ढव्रताः।
दुर्बल हि बलीयसो विप्रा हि ब्रह्मतेजसा।।[31]

29. श्रीमद्भगवद्गीता, 7/8–9
30. वही, 7/10–11
31. महाभारत, आदि पर्व, 179/12

यहाँ जल, वायु और वृक्षों के माहात्म्य की ओर महाभारत के रचयिता का विशेष आग्रह है। इनके सेवन से मनुष्य सुखी एवं निरोग रहता है। महाभारत के अनुसार पर्यावरण सत्त्व, रज, तम् गुणों से पूरित परमाणुओं का संगठन हैं। जिसकी तुलना आज के विज्ञान प्रधान वर्तमान युग में प्रोटान, इलेक्ट्रान एवं न्यूट्रान से की जा सकती है। इसके सम्बन्ध में श्री कृष्ण कहते हैं -

'सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्'।।[32]

हे अर्जुन! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाधते हैं। इन्ही गुणों से प्रकृति का विकास होता है। महाभारत में पंचतत्त्वों के महत्त्व का भी प्रतिपादन किया गया है। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये पांच महाभूत शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांच विषम वैकृत सर्ग के अन्तर्गत हैं।[33]

महाभारत में पृथ्वी की विधिवत स्तुति की गयी है। पृथ्वी की सुरक्षा एवं संरक्षण की बात तत्कालीन तथ्यों से परिलक्षित होती है। लाक्षागृह से जीवित बच जाने पर जब पाण्डवों को पुनः खाण्डवप्रस्थ प्राप्त हुआ तो उन्होंने सर्वप्रथम पृथ्वी की पूजा की। पृथ्वी का अतिशय उपभोग अनुचित है। यदि मानव धर्म-मार्ग का अनुसरण नहीं करता तो निश्चित रूप से धर्मच्युत माना जायेगा। यहाँ पृथ्वी-दान को सभी दानों में श्रेष्ठ कहा गया है।[34] यहाँ भी वेदों के समान पृथ्वी को माँ स्वीकार किया गया है।[35] पृथ्वी से उत्पन्न वनौषधियों से जीवन पालित-पोषित होता है। आदिपर्व में आया है कि वन में उत्पन्न हुए वृक्षों की भाँति परस्पर आश्रित रहकर लोग सुख से जीते हैं। इनको आश्रय देने वाले बलवान् वैभवशाली मित्र और एक दूसरे के सम्वर्धक होते हैं -

'बलवन्तः समृद्धार्था मित्रवान्धवनन्दना।
जीवन्ति परस्परमाश्रित्य द्रुमाः काननजाइव'।।[36]

---

32. श्रीमद्भगवद्गीता, 14/5
33. महाभारत, शान्ति पर्व, 302/25
34. वही, आदि पर्व, 206/51
35. वही, अनुशासन पर्व, 62/3
36. वही, आदि पर्व, 138/27

इनकी कृपा से मनुष्य को भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति होती है। ऐसी भावना इनके प्रति उत्पन्न करना पर्यावरण-संरक्षण की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। वृक्ष, पेड़-पौधों से वायु और वर्षा का सन्तुलन बना रहता है। महाभारत में वृक्षों को दान देने का जो उल्लेख प्राप्त होता है, उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि इस लोक में फूल और फल देने वाले वृक्ष लोगों को तृप्त करते हैं तथा पुत्र के समान वृक्ष को दान देने पर परलोक में वे वैतरणी पार लगा देते हैं।[37] इन्हें भगवान् रूप में भवसागर से पार कराने वाला बताया गया है। यहाँ वृक्षारोपण के सम्बन्ध में भी कहा गया है कि जलाशय के तटीय प्रदेश में सदा वृक्ष लगाना चाहिए। जो पारलौकिक कल्याण चाहते हैं, उन्हें वृक्षों का पुत्र की भाँति पोषण करना चाहिए। वे यहाँ धर्मतः पुत्र माने गये हैं -

'तस्मात्तडागे वृक्षा वै रोप्या श्रेयोऽर्थिना सदा।
पुत्रवत्परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः।।[38]

यहाँ वृक्षों को पुत्रवत् मानने के कारण पर्यावरण संरक्षण का प्रबल समर्थन किया गया है। जल की पवित्रता का उल्लेख महाभारत के कई स्थलों पर है। नदी के जल में स्नान करना पवित्र कर्म बताया गया है। अनुशासन पर्व में वर्णित अंगिरा और गौतम ऋषि के संवाद में जल के माहात्म्य को अति विस्तार से बताया गया है। समुद्र का स्वच्छ जल अपनी लहरें उठाकर वायु का अभिवादन स्वीकार करते हुए अपनी विनम्रता का परिचय देता है। जल ही जीवन है। यह पर्यावरण का अविभाज्य अङ्ग है। इसके बिना मानवीय चेतना शून्य हो जायेगी और पृथ्वी मरूस्थल रूप में परिणत हो जायेगी। जल-संरक्षण भी प्रकृति पूजा का ही अङ्ग है। इससे दीर्घजीवन की प्राप्ति होती है। वृक्ष, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि सभी का जीवन अमृततुल्य जल पर ही अवलम्बित है। ऋषि का कथन है कि भली-भाँति निरोगी तथा रोग-विनाशक इस जल को मैं लाता हूँ, स्वच्छ जल पीने से मैं मृत्यु से बचा रहूँगा। अन्न, घृत, दुग्ध आदि सामग्री तथा अग्नि सहित घटों में आकर सम्यक् रूप से बैठता हूँ।[39] इसे देवतुल्य अमरता का साधन माना गया है। धरती पर 70 प्रतिशत

37. महाभारत, अनुशासन पर्व, 99/30
38. वही, 99/31
39. अथर्ववेद, 3/12/9

जल होने पर भी पीने योग्य जल मात्र एक प्रतिशत ही है। अतः शुद्ध जल की मात्रा को यथावत् रखते हुए उसकी मात्रा में वृद्धि करने की आवश्यकता है। वर्षा का जल बावड़ी, कुएँ, तालाब, आदि में संरक्षित होकर वर्षानन्तर जनकल्याण के कार्य में आता है। यह कार्य पुण्यतम् है।[40] जल ही सबके जीवन का मूलाधार है। महाभारत में इसके सम्बन्ध में कहा गया है -

'आदिभः सर्वाणि भूतानि जीवन्ति प्रभवन्ति च।

तस्मात् सर्वेषु दानेषु तोयदानं विशिष्यते'।।[41]

अनुशासन पर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर को जलाशय निर्माण से धर्म, अर्थ, एवं काम तीनों फल की प्राप्ति का उपदेश दिया है। अनुशासन पर्व में नदियों के निरन्तर प्रवाह की ओर भी संकेत किया गया है -

'कश्मीरः मण्डले नद्योः या पतन्ति महानदम्।

त नदीः सिन्धुमासद्य शीलवान् स्वर्गमाप्नुयात्'।।[42]

अर्थात् कश्मीर की नदियाँ मिल-जुलकर महानद बनकर समुद्र से संगम करती हैं। वहाँ का तीर्थयात्री स्वर्ग में स्थान पाता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र मे यह भी वर्णन किया गया है कि नदियों में विष उत्पन्न हो गया है तो देव जन उसे मिलकर दूर कर ले। इस प्रकार सभी नदियाँ प्रदूषण रहित हो जायेंगी।[43] आज के नदियों की दशा पर भी यही कार्य किया जाना चाहिए, सभी लोग नदियों को विषैली बनाने के लिए उत्तरदायी हैं। अतः सबको मिलकर नदियों की रक्षा करनी चाहिए एवं उन्हें प्रदूषण मुक्त रखना चाहिए।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह एक दैवी कर्म है। छान्दोग्योपनिषद् में यज्ञ के विषय में कहा गया है यह सब अशुद्धियों, दोषों को नष्ट कर वायुमण्डल को शुद्ध करता है। अतः इसे यज्ञ कहा जाता है -

'एष ह वै यज्ञो योऽयं इदं सर्वं पुनाति तस्मादेव एवं यज्ञः'।[44]

---

40. महाभारत, अश्वमेध पर्व,
41. वही
42. महाभारत, अनुशासन पर्व, 26/8
43. ऋग्वेद, 7/50/3-4
44. छान्दोग्योपनिषद्, 4/17/9

महाभारत में प्रत्येक द्विज का यज्ञ अनिवार्य कर्म बताया गया है। ऋषिगण विश्वकल्याणार्थ यज्ञ में निरत रहते हैं। भगवान् कृष्ण स्वयं अर्जुन से कहते हैं -

'अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः'।[45]

यज्ञ की महत्ता इसी से व्यक्त हो जाती है कि सृष्टि की उत्पत्ति यज्ञ से हुई है। प्राणी अन्न, वर्षा, परस्पर रूप से यज्ञ से सम्बद्ध है। यज्ञ के द्वारा सन्तुलित मात्रा में वर्षा होती है। सन्तुलित अन्न उत्पन्न होने पर मनुष्यों व अन्य जीव-जन्तुओं का जीवन निर्वाह सम्भव है।

इस प्रकार महाभारत में सर्वत्र पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रकृति पूजा पर बल दिया गया है। वायु, वृक्ष, पृथ्वी, यज्ञ आदि में यहाँ दैवी भाव का स्पष्ट संकेत प्राप्त है। सम्पूर्ण प्रकृति में देवत्त्व का दर्शन ही पर्यावरण संरक्षण का स्थायी समाधान है। आज भी सभी वृक्ष, पेड़-पौधें, नदी, तालाब, सागर इत्यादि तत्त्वों पर दैवी भाव रखकर ही पर्यावरण संरक्षण करने में हम पूर्ण समर्थ हो सकते हैं। विश्व पर्यावरण को पूर्ण रूप संरक्षित एवं प्रदूषण मुक्त रखने के लिए भारतीय ऋषियों का सम्पूर्ण समाज के लिए यही उद्घोष है। यही विश्व में बढ़ रहे पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने का सर्वोत्तम् साधन है। पर्यावरण के सभी घटकों के संरक्षण की प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिज्ञा करनी होगी। इनके स्थायित्व में ही जीवन का स्थायित्व है।

यह शरीर पंचतत्त्वों से निर्मित है। पंचतत्त्वों के अन्तर्गत भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश आते हैं। भूत तत्त्व से अन्न अर्थात् भोज्य सामग्री तथा वृक्ष, वनस्पतियाँ प्राप्त होती हैं। जल तत्त्व से जीवन शक्ति मिलती है। अग्नि तत्त्व से ताप, उष्मा और गति प्राप्त होती है। वायु तत्त्व ही प्राणवायु है। आकाश तत्त्व ध्वनि तरंगों, शब्द शक्तियाँ एवं सम्वेदनाओं का स्रोत है। इस प्रकार इस पञ्च प्राकृतिक तत्त्वों से सम्पूर्ण जगत् प्रभावित रहता है। यही भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास का मूलाधार है। इनका सन्तुलन जीवन के स्रोत को प्रभावित करता है, क्योंकि पर्यावरण भौतिक तत्त्वों से निर्मित वह आवरण है जो मानव या जैव समुदाय को चारों तरफ से घेरे हुए है और जिसका प्रभाव मानव के विकास पर पड़ता है। अतः पर्यावरण संतुलन से ही हमारा जीवन है।

45. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/14

पर्यावरण की मूल इकाई प्रकृति है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' के अनुसार प्रकृति परमात्मा का स्वरूप है। परमात्मा सबके कारण हैं। जिस प्रकृति को लेकर वे सृष्टि की रचना करते हैं उसका नाम 'अपराप्रकृति' है, और अपना अंश जो जीव है उसको भगवान् 'पराप्रकृति' कहते हैं। अपराप्रकृति जड़ और परिवर्तनशील है। इसके अन्तर्गत पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन बुद्धि और अहंकार आते हैं। पराप्रकृति ही 'सम्पूर्ण' सृष्टि को जन्म देने वाली है।[46] यही सभी को धारण करती है। वास्तव में यह जगत्, जगत् रूप नहीं है प्रत्युत भगवान् का ही स्वरूप है- **वासुदेवः सर्वम्।**[47]

भारतीय ऋषि संसार को स्वतन्त्र सत्ता न मानकर वह भगवान् का स्वरूप मानता है और सम्पूर्ण संसार को ईश्वरमय देखता है। इस दृष्टि से प्रकृति के सभी अवयवों में दैवी भावना का संचार होता है। यही कारण है कि पर्यावरण संरक्षण की दैवी चेतना भारतीय-समाज में आदिकाल से ही रही है। सम्पूर्ण वैदिक एवं लौकिकसाहित्य इस भावना से ओत-प्रोत है। प्राकृतिक शक्तियों में दैवी स्वरूप की प्रतिष्ठा, पर्यावरण को मानव आचरण तथा अनुभूतियों से जोड़ने का सहज प्रयास रहा है। वेद, प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति करता है, इसलिए कहा जा सकता है कि पर्यावरण संरक्षण ही प्रकृति पूजा का स्थायी भाव है।

वैदिक ऋषि सुरम्य प्राकृतिक वातावरण में ही मन्त्रों का दर्शन करता था और आत्म-दर्शन की प्रेरणा लेता था। इसी क्रम में आर्ष-साहित्य भी पर्यावरणिक संगठनों से उद्भूत हुआ है। वैदिक युग में लोककल्याण तथा ब्रह्माण्ड के संरक्षण की भावना सर्वोपरि थी। पर्यावरण का मानव से सम्बन्ध केवल उपयोगितावादी नहीं था, प्रत्युत्त सहयोगवादी व रचनात्मक भी था। मनुष्य प्राकृतिक संरक्षण के लिए पृथ्वी, वृक्ष, वायु, जल, आकाश, अग्नि, पशु-पक्षियों आदि पर दैवी भाव रखता रहा है। उनकी पूजा करता रहा है, इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण का भाव तत्कालीन समाज में विशेषरूप से विद्यमान रहा है।

पर्यावरण संरक्षण के प्रति पौराणिक ऋषियों का क्या दृष्टिकोण रहा है? इसको जानने के लिए वाराहपुराण के एक आख्यान से भली-भाँति जाना जा सकता

---

46. श्रीमद्भगवद्गीता, 7/4-5

47. वही, 7/19 - वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः

है। ये सभी पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ एवं सभी जीव-जन्तुओं की भूमिका पर्यावरण के संरक्षण के लिए महत्त्वपूर्ण है। वाराहपुराण के एक आख्यान में पर्यावरण संरक्षण के सभी तत्त्व एक ही साथ प्राप्त हो जाते हैं। गोकर्ण का देवियों से वार्तालाप के क्रम में[48] जब उन्होंने देवियों से विकृत रूप होने का कारण पूछा तो ज्येष्ठा देवी ने बताया - मनुष्यों को मुक्तदायिनी मथुरापुरी में अयोध्या के राजा अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ चातुर्मास्य हेतु आया। राजा ने जहाँ निवास किया वहाँ विष्णु पंचायतन का मन्दिर, जलाशय तथा वाटिका थी। उस वाटिका में सर्वऋतु फलदायक वृक्ष थे। राजा के सेवकों ने वृक्षों को काट डाला जिससे हमारी दुर्गति हुई। गोकर्ण ने पूछा कि उपवन लगाने वालों को क्या फल मिलता है? तब ज्येष्ठा ने कहा - द्विजातियों के लिए प्रथम धर्म की प्राप्ति का साधन वृक्षारोपण है अर्थात् यज्ञ के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा कूप, उपवन आदि का रोपण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। एक पीपल, एक नीम, एक वट वृक्ष, दो नीबू तथा पाँच आमों को लगाने वाले तथा वावली निर्माता नरक गामी नहीं होते हैं। ज्येष्ठा की बात सुनकर गोकर्ण ने कहा ईन्धनार्थ ले जाने पर उस वृक्ष को अग्निहोत्र कहा जाता है। छायादान से पक्षियों को आराम प्रदान करने तथा प्राणियों के लिए औषधि हेतु अपना पत्र, मूल, छाल, फूल-फल प्रदान करने से वृक्षों को पञ्चयज्ञ कहा जाता है। लोगों को गृह निर्माणार्थ काष्ठ प्रदान करने तथा जन्तुओं को अपने कोटरे में आवास प्रदान करने से वृक्षों का स्वभावगत यज्ञीय कार्य पूर्ण होता है क्योंकि ये वृक्ष भिक्षा-पात्र के समान होते हैं। वृक्ष अपने फलों द्वारा पक्षियों का भरण-पोषण करते हैं। साथ ही साथ वृक्षारोपण को पुत्र के समान उपकारक माना जाता है क्योंकि तत्त्वज्ञ लोगों का कहना है कि वृक्ष लगाने वाले के लिए वृक्ष पुत्र तुल्य हैं।[49] वह उसे पुत्र भाव से पालता है।

अतः इस आख्यान से यह ध्वनित होता है कि पर्यावरण प्रदूषण का कारण मनुष्य निर्मित त्रासदी है। हमारी भारतीय संस्कृति अरण्यसंस्कृति है। हमारे सद्ग्रन्थों की रचना ऋषियों ने अरण्य में रहकर किया है। हमारे गुरुकुल अरण्य में शिक्षा के केन्द्र स्थल थे। हमारे यहाँ यज्ञ की संस्कृति होने के कारण पर्यावरण संरक्षण स्वतः ही हुआ करता था। प्रकृति हमारे लिए जड़ पदार्थ न होकर हमारी ममतामयी माँ

48. वाराहपुराण, अध्याय, 172-173

49. विष्णुपुराण, 2/12/37- यदम्बु वैष्णवः कायस्ततो विप्र वसुन्धरा।
पञ्चाकारा समुद्भूता पर्वताब्ध्यादिसंयुता।।

रही है। हम प्रकृति के माध्यम से जो भी सेवा लेते हैं, उसको दूसरे तरह से यज्ञ के माध्यम से वापस भी करते हैं। इन बिन्दु के अतिरिक्त पुराणों में पर्यावरण संरक्षण के अनेक सन्दर्भ आये हैं, जिनमें से कुछ स्थलों को मैं चिह्नित करना चाहूँगा।

जल की प्रतिष्ठा के लिए ही भगवान् विष्णु को जलाशयी कहा गया है।[50] जिस समुद्र में भगवान् विष्णु का वास है, उसे समाज प्रदूषित नहीं करेगा। समाज जल में दैवी भावना रखता है। भारतीय संस्कृति ईश्वर मूला संस्कृति है। यह ईश्वर की आस्था व व्यापक दृष्टिकोण से पूर्णतः ओत-प्रोत है। जल भगवान् विष्णु का मूर्तस्वरूप है। जल से ही पर्वत और समुद्रादि सहित कमल के समान आकार वाली पृथ्वी उत्पन्न हुई।

श्रीमद्भागवतपुराण में आया है कि नदी तरंगरूपी करों से भगवान् को पुष्प अर्पण करती है और पुष्प के माध्यम से मानो वह कृष्ण को अपना हृदय ही समर्पित कर देती है।[51] भगवान् कृष्ण ने यमुना को कालिया-नाग की विषाग्नि रो प्रदूषित देखा। यमुना का जल मनुष्यों और गायों के लिए अपेय हो गया था -

'तेनेयं दूषिता सर्वा यमुना सागरङ्गमा।

न नरैगोधनैश्चापि तृषार्तैरूप भुज्यते'।।[52]

इसीलिए भगवान् कृष्ण ने यमुना के जल को स्वच्छ एवं निर्मल व विषरहित करने के लिए उस कालिया-नाग को वहाँ से हटने के लिए बाध्य कर दिया। कृष्ण के इस पुनीत कार्य से देवतादि अति प्रसन्न हुए।[53] इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में जल के प्रति दैवी भाव विद्यमान था। वे जल और जीवन के अविनाभाव सम्बन्ध से पूरी तरह परिचित थे। वे जल को सदैव प्रदूषण मुक्त रखने में सब प्रकार से प्रयास करते थे। वृक्ष भी पर्यावरण की दृष्टि से चैतन्य तत्त्व है। वैश्वीकरण तथा प्रगति के नाम पर वृक्षों की अंधाधुंध कटाई हो रही है। लोग अपने स्वार्थ में जङ्गलों को समाप्त कर रहे हैं। जङ्गल को काटकर कृषि एवं उद्योग लगाये जा रहे हैं। परिणामतः उसका कुप्रभाव आज के मानव समाज को अनेक

---

50. श्रीमद्भागवतपुराण, 10/21/15
51. विष्णुपुराण, 5/7/7
52. वही, 5/7/81–82
53. वही, 1/15/8

रूपों में भोगना पड़ रहा है। वृक्षों को काटने से वायुमण्डल में अनेक दोष उत्पन्न हो रहें हैं। फलस्वरूप मनुष्य अनेक व्याधियों से ग्रसित हो रहा है। पर्यावरण-शुद्धता के सन्दर्भ में वृक्षों एवं वनस्पतियों का सर्वाधिक योगदान है। यह तथ्य सम्यक् रूपेण पुराणों में प्रतिपादित है। विष्णुपुराण में आया है कि वृक्षों में मानवीय भाव विद्यमान है। यहाँ वृक्षों से उत्पन्न कोई सुन्दर वर्णवाली मरिषा नामक कन्या का वर्णन आया है -

'मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षाणामिति निर्मिता।
भार्या वोऽस्तु महाभागा ध्रुवं वंशविवर्द्धिनी'।।[54]

इस तथ्य से वृक्षों को मानव रूपेण माना गया है, यह स्पष्ट हो जाता है। वृक्ष को रुद्र का अवतार कहा गया है। रुद्र विष का पान करके अमृत का संरक्षण करते हैं, उसी प्रकार वृक्ष भी विषाक्त वायु (कार्बन डाई आक्साइड) का पान कर अमृतमय (आक्सीजन) वायु का निस्सारण करते हैं।

भागवतपुराण में चम्पक, अरण, पुन्नाग आदि की अपेक्षा तुलसी का औषधीय महत्त्व की दृष्टि से वैशिष्ट्य प्रतिपादित है क्योंकि तुलसी के पौधे से निकली हुई एरोमा (Aroma) वायु संशुद्धिकरण में सहायक होती है।[55] इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में शीतलता प्रदान करने वाले नंदनवन, पारिजात तथा कल्पतरु के रूप में विकसित उदात्त अवधारणा वृक्षों व वनों में प्रदर्शित होती है। वस्तुतः वृक्ष-वनस्पतियाँ पूज्य भी हैं और पूजन सामग्री भी है।[56] नारदपुराण में भी वृक्षों की जीवन्तता देखने को मिलती है। उन्हें पञ्चभौतिक तत्त्वों से निर्मित कहा गया है। इस प्रकार वृक्षों में मानवीय चेतना ही पर्यावरण चेतना की परिचायिका है।[57]

वाराहपुराण के 117 वें अध्याय में वनस्पतियों और पर्यावरण का विशेष रूप से वर्णन किया गया है, जिसमें पीपल का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है,[58] क्योंकि

---

54. मिश्र डॉ. आनन्द, अभिनन्दन भारती एवं पर्यावरण चेतना, पृ. 119
55. श्रीमद्भागवतपुराण, 3/15/19
56. वही, 5/2/4
57. नारदपुराण, 42/62--74
58. वाराहपुराण, 117/26

पीपल सदैव प्राणवायु देता है और स्वयं दूषित वायु का पान करता है। इस प्रकार तत्कालीन समाज में वृक्षों का मानवीय तथा दैवीभाव दृष्टिगोचर होता है। पर्यावरण संरक्षण के लिए यही भाव महत्त्वपूर्ण थे, जिससे पर्यावरण की रक्षा होती थी। कालिदास की शकुन्तला मण्डनप्रिय होने पर भी पुष्प नहीं तोड़ती हैं।[59]

सृष्टि का प्रत्येक प्राणी अपने शरीर से ठोस, द्रव और गैस (वाष्प) रूप से विभिन्न प्रकार के मल का उत्सर्जन करता है, जिससे पृथ्वी, जल तथा वायु में प्रदूषण फैलता है। इस प्रदूषण का शमन करने के लिए पर्यावरण के प्रति सचेत हमारे मनीषियों ने गृहस्थों के लिए यह नियम बना दिया था कि बालक और वृद्ध अशक्तों को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि कम से कम पाँच आहुति अग्नि में डालकर ही स्वयं अन्न-जल ग्रहण करें। अग्निहोत्र की दृष्टि से ब्राह्मण प्रातः-सायं नित्य वैदिक विधि से हवन करते थे। होम हमारी संस्कृति का अनिवार्य अङ्ग है, जो पर्यावरण शोधन का सशक्त एवं उपयुक्त साधन है। पर्यावरण शोधन की दृष्टि से चातुर्मास यज्ञ के विधान की परम्परा का उल्लेख हमें भागवतपुराण में उपलब्ध है।[60] वर्ष पर्यन्त ऋतु के अनुसार यज्ञ के पीछे यही उद्देश्य था कि एक ऋतु से अन्य ऋतु के संक्रमण काल में पर्यावरण में व्याप्त जीवाणु तथा अन्य विकार समाप्त हो जाये, जिससे पर्यावरण अनुकूल बना रहे। पर्यावरण बोध को जन-जन तक पहुँचाने के लिए धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था परम्परागत संस्कार, व्रत,[61] अनुष्ठान, पूजा पद्धति,[62] विविध पर्व एवं नृत्य-गीत आदि लोकजीवन की समस्त क्रियाओं में पर्यावरण चेतना अन्तर्निहित है। पर्यावरण तथा धर्म के मूल तत्त्वों का पर्याप्त सामंजस्य भागवतपुराण में स्थापित किया गया है। आचारसंहिता में पर्यावरण संरक्षण की महत्ता का उद्घोष मिलता है।[63]

भारतीय संस्कृति विश्व की यज्ञमूलक प्राचीनतम् संस्कृति है। पृथ्वी यज्ञ का ही फल है। यज्ञ के अभाव में धर्म क्षीण हो जाता है क्योंकि समस्त जगत् हवि

---

59. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/9
60. श्रीमद्भागवतपुराण, 4/7/41, 5/7/5, 7/15/48
61. वही, 8/9/14, 10/28/1, 9/4/39
62. वही, 7/14/9, 10/45/26–30
63. वही, 11/11/36

(यज्ञ में समर्पित की हुई सामग्री) का फल है। वृष्टि का कारण हवि (यज्ञीय घृतादि पदार्थ) हैं। इसी से प्रसन्न होकर अग्निदेव वृष्टि को सम्भव बनाते हैं। इसी की प्रेरणा के लिए विष्णुपुराण में प्रत्येक गृहस्थ को यज्ञ करने का निर्देश दिया गया है।[64] इस यज्ञीय निर्देश में पर्यावरण शुद्धि का ही पवित्र भाव निहित है। यहाँ यज्ञ के चौदह सामग्रियों का उल्लेख किया गया है,[65] जो इस प्रकार है - श्यामक (समा), नीवार, जर्तिल (वनतिल), गवेधु, वेणुयव, मर्कट (मक्का), ब्रीहि, यव, माष, गोधूम, अणव, तिल, प्रियङ्गु, कुलत्थ इन चौदह ग्राम्य एवं वनौषधियों को यज्ञानुष्ठान की सामग्री माना गया है। वनौषधियाँ जब यज्ञ कुण्ड में पड़ती हैं तो उनसे निःसृत धूम से वायुमण्डल में व्याप्त विषैली गैसों का शमन होकर रोगाणुओं का विनाश होता है। इनका परिवर्तन अन्य गैसों के रूप में नहीं होता है। यही यज्ञीय धूमों का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है। वायुमण्डल के शुद्ध होने पर ही शुद्ध मानसून बनता है और संतुलित वर्षा होती है, जिस पर हमारा जीवन निर्भर है।

आज भौतिक विकास के नाम पर चतुर्दिक सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। अनाचार, भ्रष्टाचार का विकास हो रहा है। यांत्रिक एवं औद्योगिक सुधारों के प्रचण्ड विस्तार के कारण पर्यावरण का क्षरण हो रहा है। जनजागृति समृद्धि के युग में पूर्णतः प्रविष्ट हुई सी प्रतीत हो रही है। यह केवल आभास ही नहीं है, इसमें बहुत कुछ तथ्यगत सत्यता भी है। यान्त्रिक संस्कृति ने जिन शक्तियों को जन्म दिया है, वे दोनों तरह की है - उत्कर्ष करने वाली तथा अपकर्ष करने वाली भी। आज की यान्त्रिक संस्कृति जलती हुई मशाल व धधकती हुई अग्नि के समान है। मशाल मार्गदर्शन करती है और घरों में आग भी लगाती है। सच तो यह है कि ये दोनों कार्य उपयोग करने वाले मानव पर निर्भर है। विज्ञानजनित तथा यान्त्रिक संस्कृति का भी यही हाल है। आध्यात्मिक शक्तियों का आह्वान करने वाली सत्प्रवृत्ति ही भविष्य के प्रलयङ्कारी संग्राम से रक्षा एवं सम्पूर्ण पर्यावरण को मानव के अनुकूल बनाने में समर्थ हो सकती है। आर्ष साहित्य इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकता है। पर्यावरण संरक्षण के लिए ऋषियों की यह एक निराली

---

64. विष्णुपुराण, 1/6/20–22

65. वही, 1/6/25

कला कही जा सकती है। आर्ष काव्यों के सम्यक् अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि पर्यावरण संरक्षण भारतीयों का मूल लक्ष्य है। भली-भाँति संरक्षित एवं प्रदूषण रहित वातावरण में ही मनुष्य का जीवन पुष्पित और पल्लवित होता है। पर्यावरणीय चेतना से ओत-प्रोत आर्ष-साहित्य आज के दिग्भ्रमित मानवसमाज को मार्गदर्शन करने में महती भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

अध्याय-3

गद्य-काव्यों में पर्यावरण का दैव स्वरूप

संस्कृत काव्यों में गद्य-काव्य का विशेष गाम्भीर्य है। सामान्यतः भाषा के विकास की प्रक्रिया में सर्वप्रथम गद्य का ही स्थान माना जाता है। क्योंकि ग्रद्य में छन्दात्मक मात्राओं के गणना का अभाव होता है। सामान्य वार्तालाप मे छन्दात्मक शैली का व्यवहार सम्भव नहीं है। भारतीय साहित्यशास्त्रियों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है- दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य। श्रव्यकाव्य को पुनः तीन भागों मे बाटा गया है- गद्य, पद्य एवं चम्पू। गद्य-काव्य भाषा की वह विधा है जिसमें पद्य-बन्ध का परित्याग करते हुए भाषा एवं रस का समुचित परिपाक होता है। इसीलिए 'आचार्य दण्डी' ने गद्य-काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है - **'अपादः पदसन्तानो गद्यम्'**[1] अर्थात् पदबन्ध रहित वाक्य–विन्यास को गद्य कहा जाता है।

पद्यात्मक सुभाषितों के समान ही गद्यकाव्य में भी सुभाषित शब्दावलियों की सृष्टि प्राप्त होती है, जिसमें जीवन मूल्यों सम्बन्धी अनेक तत्त्वों का विशेष अर्थ समाहित होता है। पर्यावरण भी एक मूल्य है। उसके प्रदूषण से हमारे जीवन का अस्तित्व संकट में पड़ गया है। पर्यावरण का चिन्तन गद्य कवियों द्वारा इस धराधाम पर बहुत प्राचीन समय से ही हो रहा है। पर्यावरण की परम्परा दैवी सिद्धान्त के आधार पर पुष्पित एवं पल्लवित हुई है। कवियों की ऐसी मान्यता थी कि सम्पूर्ण जीव-जगत् ईश्वर का स्वरूप है। पुरुष विशेष की ही कृपा से संसार गतिशील है, अतः सब में ईश्वर का दर्शन करना चाहिए। मानव, पशु, वृक्ष-वनस्पतियाँ, तड़ाग-नदी, पर्वत-पठार सब में ईश्वर व्याप्त है। इसीलिए भारतीय संस्कृति में इन्हें देव का स्थान प्राप्त है। वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं कि 'वृक्षों को प्राकृत साहित्य मे रुक्खमह कहा गया है। यह पूजा गिरिमह, नदीमह के सांस्कृतिक आधार स्तम्भ पर ही पल्लवित हुई है। भारतीय-साहित्य और कला दोनों में देवताओं के रूप में वृक्षों की मान्यता और पूजा सामग्री भरी पड़ी है। पीपल, वट, तुलसी, आमलकी आदि की

1. काव्यादर्श, 1/23

पूजा अभी तक लोक में इतनी अधिक व्याप्त है कि वह ऊँच-नीच सभी प्रकार के सामाजिक स्तरों पर धर्म का जीवित अङ्ग बनी हुई है'।[2] कार्तिक मास में तुलसी पूजन की परम्परा आज भी विद्यमान है। तुलसी आस्था एवं श्रद्धा की प्रतीक है। अपरिमित औषधीय गुणों से युक्त भी है। वर्ष भर तुलसी में जल अर्पित करना एवं सायंकाल तुलसी के नीचे दीप जलाना अत्यन्त श्रेष्ठ माना जाता है। कार्तिक मास मे तुलसी के समीप दीपक जलाने से मनुष्य अनन्त पुण्य का भागी बनता है। इस मास मे तुलसी कि समीप दीपक जलाने से व्यक्ति को साक्षात् लक्ष्मी की कृपा प्राप्त होती है क्योंकि तुलसी मे साक्षात् लक्ष्मी का निवास माना गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वृक्षों को देव तुल्य समझा गया है। कवि दण्डी ने भी 'अवन्तिसुन्दरी' तथा 'दशकुमारचरित' में वृक्ष-वनस्पतियों में देवत्त्व का दर्शन किया है। 'अवन्तिसुन्दरी' में वनस्पति को भगवान् या देवी कहा गया है।[3] वनस्पति हमारे जीवन का अभिन्न स्वरूप है। यह जीवन के प्रत्येक अवस्था में विद्यमान है। इसी से प्राणवायु मिलती है। इसके सौन्दर्य से चित्त उल्लसित हो जाता है। इनमें अनेक औषधीय गुण विद्यमान हैं। अतः वनस्पति हमारे स्वास्थ्य की भी रक्षा करती है। 'दशकुमारचरित' भी वृक्ष-पूजन संस्कृति का उद्घाटन करता है। वृक्षों में दैवी सत्ता को मानने वाले दण्डी ने लिखा है कि जङ्गल में प्रमति सोने के पूर्व वृक्ष से प्रार्थना करता है कि जिस देवता का निवास इस वृक्ष पर हो वह मेरी रक्षा करें। इस समय मैं अकेला हूँ और महावन शिवजी के नीले कण्ठ के सदृश रात्रि से व्याप्त घोर अन्धकारमय विशाल गुफाओं वाला है तथा घातक जन्तुओं के गमनागमन से जंगल अतिभयावना है।'[4] इस प्रकार निवेदन करके प्रमति वृक्ष के नीचे सोता है। जैसे मानों वह ईश्वर की गोंद में निश्चिन्त सोया हुआ है। कादम्बरी के महाश्वेता वृत्तान्त में भी वृक्षों में दैवीभाव का साक्षात्कार होता है। चन्द्रापीड की आत्मकथा सुनने के अनन्तर 'महाश्वेता' अपना भिक्षापात्र लेकर आश्रम-वृक्षों के नीचे घूमने लगी। कुछ ही देर में उसका भिक्षापात्र अपने आप गिरे हुए फलों से भर गया -

---

2. अग्रवाल वासुदेव शरण, प्राचीन भारतीय लोक धर्म, पृ. 76
3. अवन्तिसुन्दरी, पृ. 127
4. दशकुमारचरितम्, पञ्चमोच्छ्वास, उत्तरपीठिका, पृ. 289–291

'विदित सकल वृत्तान्ताचोत्थायसा कन्यका भिक्षाकपालमादाय तेषामाश्रमम् तरूणां तलेषु विचचार। अचिरेण च तस्याः स्वयं पतितैः फलैरपूर्य्यतभिक्षाभाजनम्'।[5]

कवि ने वृक्षों के दैवी भाव को ज्ञापित किया है। महाश्वेता के भिक्षापात्र लेकर घूमने मात्र से फल स्वयं उसके पात्र में आ गिरे। वृक्ष हमें सदैव देता है। ईश्वर भी सदैव देता है। अतः वृक्ष भी ईश्वर स्वरूप ही है। सुबन्धु भी ताल वृक्ष के फल का उल्लेख करते हुए लिखा है कि अत्यधिक ऊपर से गिरने के कारण फूटे हुए तालफल के रस से गील हाथों को चाटने में उत्सुक बन्दरों के समूह से व्याप्त था। प्रवाहित झरनों के तटों पर बैठे हुए जीवञ्जीवक के जोड़ों द्वारा चाटे गये अनेक फलों के रस की सुगन्ध से सुरभित प्रान्त प्रदेश वाला था -

''सुदूरपतनभग्नतालफलरसार्द्र करतलादनोत्सुकशाखामृगकदम्बकः प्रलम्बनमान निर्झरापान्तोपविष्टजीवञ्जीवक मिथनलेलिह्यमानविविधफलरसामोद सुरभित परिसरः'।[6]

कवि वृक्षों के फल के स्वतः देने के भाव के साथ-साथ बन्दरों के वृक्षों के फल से उत्पन्न गन्दगी की सफाई का भी उल्लेख किया है। यही पर्यावरण का नियम है। इस संसार के सभी जीव-जन्तु पर्यावरण की रक्षा करते हैं। पशु-पक्षी अनेक प्रकार के अपशिष्ट पदार्थ को अपना भोजन बना लेते हैं। जिससे वायुमण्डल में उनकी दुर्गन्ध फैलने से बच जाती है। पर्यावरण संरक्षण एवं विकास के लिए उनका अस्तित्व होना अत्यावश्यक है। इनके द्वारा अपशिष्ट पदार्थ को अपना भोजन बनाने के कारण पर्यावरण में घातक तत्त्वों की उपस्थिति नहीं होती है। अतः पृथ्वी पर पर्यावरण का सन्तुलन पेड़-पौधे एवं जीव-जन्तुओं पर आधारित है। अथर्ववेद में पशु-पक्षियों के नामों एवं इनके गुणों का केवल उल्लेख ही नहीं मिलता है, बल्कि उनकी सुरक्षा करने से होने वाले पुण्य का विस्तार से उल्लेख भी किया गया है। 'यजुर्वेद' में हंस का वर्णन किया गया है। यह विष निवारक औषधियों को जानता है, इसलिए इसका महत्त्व अधिक है। इसकी पीठ नीली होती है। यह रात्रि में भी जागरण करता है। इसके गुणों के सम्बन्ध में कहा गया है कि -

---

5. कादम्बरी, महाश्वेतावृत्तान्त, पृ. 406
6. वासवदत्ता, विन्ध्याचलवर्णनम्, पृ. 80

'सोममद्भयोव्यपिवच्छन्दसा ह... सः शुचिषत्। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान..शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु'[7]

अर्थात् हंस के समान परमव्यापक आकाश में गमनशील आदित्य देव जल युक्त सोम को रश्मियों से पृथक करके सोमपान करते हैं। इसीलिए हंस को नीर-क्षीर विवेकी भी कहा गया है। बाणभट्ट 'कादम्बरी' में जाबालि आश्रम में शुक के प्राण रक्षा सम्बन्धी तथ्य का बहुत सजीव चित्र उपस्थित किया है - 'हारित स्नान करने के लिए जा रहा था। रास्ते में उसने देखा कि शुक शावक घायल प्यास से तड़प रहा है। बहुत दूर से गिरने के कारण उसकी अब थोड़ी ही श्वास शेष है। नेत्र बन्द हो रहे हैं। श्वास फूल रही है, बार-बार मुख पृथ्वी पर लथाड़ता है। चोंच फाडता है। यह अपनी गर्दन भी उठाने में समर्थ नहीं है। अतः आओ जब तक इसकी जान न निकले तब तक इसे उठा कर जल के समीप पहुंचा दे, ऐसा कह कर मुनिकुमार के द्वारा शुक को (मुझे) सरोवर के तट पर पहुँचा दिया गया। जल के समीप पहुँचकर अपना दण्ड-कमण्डल एक किनारे पर रखकर स्वयं मुझे उठाकर भोजन-पानादि के प्रयत्न को छोड़ देने वाले मेरे मुँह को ऊपर कर अपनी उंगलियों से जल-बिन्दु पिलाई। जल के छीटों से मुझे स्नान कराया, मुझमें पुनः प्राण का सञ्चार हो गया। तव तट के समीप उत्पन्न हुए कमल के पत्रों से शीतल छाया में रखकर हारीत ने यथोचित स्नान किया'।[8] मुनिकुमार द्वारा शुक की प्राण रक्षा के साथ-साथ प्रत्येक प्राणि के जीवन के लिए जल का कितना महत्त्व है यहाँ देखा जा सकता है।

प्राचीन काल से ही जल संरक्षण एवं उसके प्रबन्धन की ओर ध्यान दिया जाता रहा है। जल प्रकृति का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। पृथ्वी के प्रत्येक जीव के लिए जल अनिवार्य है। शरीर में सबसे ज्यादा अंश जल का ही होता है। वर्तमान समय में मानव की वैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रगति के लिए जल का अविवेकपूर्ण ढंग से दोहन किया जा रहा है। शुद्ध जल की मात्रा में धीरे-धीरे कमी होती जा रही है और जनसंख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। इस प्रकार जल और जनसंख्या के अनुपात में पर्याप्त अन्तर बढ़ता जा रहा है। जो जल अल्प मात्रा में है उसे भी हम अशुद्ध

---

7. यजुर्वेद, 19/74
8. कादम्बरी, शुकजलपानादिवर्णनम्

कर अपेय बना रहे हैं। अतः भविष्य में जल संकट के समाधान के लिए जल के दैवी भाव का स्वरूप जन-जन तक पहुँचाना होगा। बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' में उस स्थल को दैवी जल स्वरूप से मण्डित किया है जहाँ महेश्वेता की तपस्थली है। उस तपस्थली में दिव्य सरोवर का उल्लेख प्राप्त होता है जो अत्यन्त रमणीय पवित्रता लिए हुए है। चन्द्रापीड उस सरोवर को देखने पर स्वयं अनुभव कर रहा है -

"आलोकमात्रेणैवापगतश्रमो दृष्ट्वा मनस्येवमकरोत् अहो! निष्फलमपि मे तुरगमुखमिथुनानुसरणम् एवदालोकयतः सरः सफलतामुपगतम्। अयं परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्यद्रष्टव्यदर्शनफलम्, आलोकितः रमणीया नामन्तः, दृष्ट आह्लादनीयानामवधिः दीक्षिता मनोहराणां सीमान्तलेखा प्रत्यक्षीकृता प्रीतिजनानां परिसमाप्तिः विलोकितादर्शनीयानामवसानभूमिः इदमुत्पाय सरः सलिलम्...' ।[9]

अर्थात् उस सरोवर को देखते ही चन्द्रापीड की थकान समाप्त हो गयी। वह उसे देखकर मन में विचार करने लगा, यद्यपि इस किन्नर युगल के पीछे मेरा इतनी दूर दौड़ना व्यर्थ चला गया। तथापि इस सरोवर को देखकर वह सफल भी हो गया। इन आँखों ने आज दर्शनीय वस्तु को देखने का पूरा फल पा लिया। वस्तुतः मैंने रमणीम वस्तुओं का सीमान्त दर्शन कर लिया, आनन्दित करने वाली वस्तुओं की सीमा को पा लिया। मनोहर वस्तुओं के अन्तिम सीमा को दृष्टिगत कर लिया। आकर्षित करने वाली वस्तुओं की पूर्णता का प्रत्यक्ष कर लिया और दर्शनीय वस्तुओं की चरमभूमि का अवलोकन भी कर लिया। इस सरोवर के जल की रचना करके फिर अमृत की रचना करने वाला विधाता ने व्यर्थ में ही अपनी सृष्टि में पुनरुक्ति कर डाली। यह जल भी तो अमृत के समान ही सभी इन्द्रियों को सूखी करने में समर्थ है। यह अपनी अति निर्मलता से आँखों को बाध रहा है, स्पर्श मात्र से यह शीत-सुख प्रदान कर रहा है। कमलगंध नासिका को परितृप्त कर रहा है। हंसों का कलरव कानों में मधु घोल रहा है और सुस्वाद होने से जीभ को संतुष्ट कर रहा है। निश्चय ही इसी को निरन्तर देखते रहने के अभिलाषा से भगवान् शंकर अपने कैलास वास का मोह नहीं छोड़ पाते हैं और अब भगवान् नारायण के मन में भी अन्य जल शयन की लालसा नहीं होती होगी क्योंकि उन्हें इस सुगन्धित एवं अमृत रस से भरे जल को छोड़कर खारे जल वाले समुद्र में सोना

---

9. कादम्बरी, महाश्वेता वृत्तान्त

पड़ता है। अवश्य ही यह सरोवर उस पूर्व युग में नहीं था जब पृथ्वी को प्रलय के समय वराह के थूथन की चपेटों से भयभीत होकर उस समुद्र के जल में छिपना पड़ा था जिसकी थाह उसकी सम्पूर्ण जल को पीकर अगस्त मुनि पा चुके थे। नहीं तो वह इसी सरोवर के अथाह और अनेक पातालों से भी गहरे जल में छिपी होती, जिससे एक क्या अनेकों वराह भी उसका पता नहीं लगा पाते। महाप्रलय के समय जलवृष्टि को अन्धकार बनाने वाले प्रलयकालीन बादल निश्चय ही इसी सरोवर के जल बिन्दुओं को लेकर सभी भुवनों को जलमग्न कर देते हैं। मैं समझता हूँ कि सृष्टि के प्रारम्भ में स्थित ब्रह्माण्डरूप जलमय भुवनों का ही समस्त जल सिमट कर इस सरोवर में संचित हो गया है। जल के विशाल स्वरूप का ऐसा वर्णन करने में बाणभट्ट जैसे कवि ही समर्थ हो सकते है। बाणभट्ट ने जल के सभी दिव्य गुणों का यहा उल्लेख किया, यहाँ उन्होंने यह भी कहा है कि जल में विष्णु का वास है। दण्डी भी अवन्तिसुन्दरी में जलाशय रूप में मानसरोवर का वर्णन किया है।[10] 'दशकुमारचरितम्' में जब मित्रगुप्त मध्यप्रदेश के एक पवर्त पर पहुँचा तो वहाँ एक अत्यन्त रमणीय जलाशय था। वहाँ पहुँचने पर उसने अत्यन्त स्वच्छ जल में स्नान किया अनन्तर मृणालखण्डों का आस्वादन किया। उस जलाशय में एक यक्ष रहता था, जिसने मित्रगुप्त से अनेक प्रश्न किया।[11] लोक जीवन में जलाशय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जलाशय में दैवी भाव होने से उसके संरक्षण का ध्यान मनुष्यों द्वारा दिया जाता रहा है। 'दशकुमारचरितम्' में नदियों का भी दैवी दृष्टि से वर्णन किया गया है। नदियों के तट पर बसे नगर तीर्थ स्वरूप की महिमा से मण्डित हैं। वामदेव का शिष्य तीर्थाटन करते हुए कावेरी नदी के तट पर गया था। कावेरी नदी का दिव्य स्वरूप उसे अभिभूत कर दिया।[12] कन्या की खोज में शक्तिकुमार भी कावेरी नदी का उल्लेख किया है।[13] दण्डी की रचनाओं में गङ्गा नदी का कथा-प्रसंग में अनेकों बार वर्णन किया गया है। इस पवित्र पुण्य सलिला नदी का भारतीय नदियों में प्रमुख स्थान है। दण्डी ने इसके पवित्र एवं दैवी भाव का सङ्केत

---

10. अवन्तिसुन्दरी, पृ. 82
11. दशकुमारचरितम्, षष्ठोच्छ्वास, उत्तरपीठिका, पृ. 340
12. वही, प्रथमोच्छ्वास पूर्वपीठिका, पृ. 35
13. वही, षष्ठोच्छ्वास, उत्तरपीठिका, पृ. 347

'दशकुमारचरितम्' में किया है।[14] गङ्गा भारतीय संस्कृति की प्रतीक है। इसके कण-कण से दैवी स्वरूप की अभिव्यक्ति होती है। नदियों के अविरल प्रवाह का मनोरम दृश्य 'शिवराजविजय' में भी दिया गया है। अफजल खाँ से तारंग कहता है कि सेनापति जी मैंने तीन साल पहले काशी में गङ्गा को देखकर गङ्गा और गण्डक नदियों के तट पर विराजमान हरिहरनाथ को प्रणाम कर विलासी लोगों से सुशोभित पटना नगर को पार कर सीताकुण्ड विक्रमचण्डिका आदि पीठों से पूजित वीर विक्रमादित्य की कीर्ति परिचायक खण्डहरों से सुशोभित अा२ गंङ्गा की लहरों से धुले प्रान्त मुंगेर का दर्शन कर कर्णदुर्ग स्थान रूपी महारथी कर्ण की मुद्रा से अंकित अङ्ग देश में तीन दिन तक निवास कर महासमृद्धिशाली वर्दवान नगर को भली-भाँति देखकर समुचित सामग्री से भगवान् तारकेश्वर की पूजा करके उससे भी पूर्व में स्थित बङ्गाल में और पूर्वी बङ्गाल में बहुत दिनों तक भ्रमण किया। जहाँ किनारे उगी हुई कमल की पंक्ति को जल प्रवाह से मसलती हुई जलरूप में परिणत हो गयी, लक्ष्मी के समान पद्मा नदी बहती है।[15] अम्बिकादत्त व्यासजी नदियों के तट पर बसे तीर्थ के साथ-साथ उसके अविरल प्रवाह की ओर संकेत किया है। नदियों के अविरल प्रवाह से ही सही अर्थ में देवत्त्व का दर्शन होता है। आजकल गङ्गा का पानी रोककर उसे टिहरी में 42 वर्ग किलोमीटर झील में भरा जा रहा है। जिसमें संचित जल टरबाइनों द्वारा 1100 मेगावाट विद्युत उत्पादन करने के लिए गङ्गा के 90% जल को रोक लिया जाता है। इसका 10% जल ही हमें मिल पाता है, शेष सहायक नदियों एवं वर्षा का जल है। टिहरी बाँध से गङ्गा को पूर्णत अवरुद्ध कर दिया गया है। परिणामतः गङ्गा में गङ्गात्त्व का पूरी तरह से अभाव हो गया है। गङ्गा में प्रदूषणरोधी तत्त्व हैं परन्तु इसमें तो प्रदूषणरोधी तत्त्वों का अभाव है। यह अब सामान्य नदी बनती जा रही है। गङ्गा अकेले अपनी धारा से 2560 किलोमीटर की लम्बी दूरी तय कर देश के करोड़ों लोगों का पेट पालती है। गङ्गा का जल फसल के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होता है। गङ्गा के प्रवाह के साथ ही सबके जीवन का प्रवाह जुड़ा है। गङ्गा को जब टिहरी बांध पूरी तरह से निगल जायेगा तब सरकारी आंकड़ों में बतायी गयी देश की उस तैतीस करोड़ जनसंख्या का क्या

---

14. दशकुमारचरितम्, प्रथमोच्छ्वास, उत्तरपीठिका, पृ. 126
15. शिवराजविजय, द्वितीयो निःश्वासः, पृ. 89–90

होगा जिसकी जीविकादायिनी गङ्गा ही है। इसी तरह यदि निरन्तर प्रदूषण बढ़ता गया तो आने वाले दिनों में यह नदी ग्रन्थों की कथाओं में शेष रहेगी। अतः इसके दैवी महात्म्य को ध्यान में रखते हुए इसके संरक्षण के लिए सभी मानव को प्रयासरत रहना चाहिए। जल के साथ-साथ पशु-पक्षियाँ, वृक्ष-वनस्पतियाँ भी पर्यावरणीय घटक हैं। इनके प्रति भी दैवी भाव रखना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है। शिवराजविजय के एक स्थल पर प्रकृति के रम्य स्वरूप का दर्शन होता है -

'कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम पवित्र पानीयं परस्सहस्र-पुण्डरीक पटलपरिलसितंपत्रिकुलकुजितपूजितं पयः पूरितं सरः आसीत्। दक्षिणतश्चैको निर्झरझर्झर ध्वनि ध्वनित दिगन्तर फल पटालाऽस्वाद चपलित चञ्चुपतङ्गकुलाऽऽक्रमणाधिक विनत शाख शाखि समूह व्याप्तः सुन्दर कन्दरः पर्वतखण्डः आसीत्।।[16]

अर्थात् चारों ओर से केले के वृक्षों से घिरी होने के कारण कुञ्ज के समान लगने वाली इस पर्णकुटी के चारों ओर पुष्पवाटिका थी। पूर्व की ओर परम् पवित्र जल वाला, सहस्रों श्वेतकमलों से पूर्ण पक्षियों के कलरव से सुशोभित और पानी से भरा एक तालाब था। दक्षिण की ओर झरने की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को मुखरित करने वाली, फल खाने से चञ्चल हो गई चोंच वाले पक्षियों के फुदक-फुदक कर बैठने से और भी अधिक झुक जाने वाली शाखाओं वाले पेड़ों से व्याप्त तथा सुन्दर गुफाओं वाली एक पहाड़ी थी। अम्बिकादत्त व्यास ने इस पवित्र तपोवन का सुन्दर वर्णन कर पर्यावरण का महनीय चित्र उपस्थित किया है।

भारतीय संस्कृति में तपोवन का विशेष महत्त्व है। ऋषि यहाँ बीतरागी होकर आनन्दपूर्वक आत्मचिन्तन में संलग्न रहा करते हैं। आत्मचिन्तन तभी सम्भव है जब मन एकाग्र हो, मन में किसी प्रकार का तनाव न हो। हमारे श्वास की गति ठीक हो। यानि कहने का अभिप्राय यह है कि हम मानसिक रूप से ठीक हों। मानसिक स्थिति ठीक होने के लिए हमारा पर्यावरण महत्त्वपूर्ण घटक है। हम शुद्ध पर्यावरण में ही अपने मानसिक स्थिति पर नियन्त्रण रख सकते हैं। तपोवन ईश्वर का स्वरूप माना जाता है। इससे ईश्वर के स्वरूप में स्थित होकर चिन्तन के फल भी स्वतः मिलने लगता है। मनुष्य आत्म-साक्षात्कार की अवस्था में शीघ्र पहुँच जाता

16. शिवराजविजय, प्रथमो निःश्वास, पृ. 7–8

है। इसीलिए प्राचीन ऋषि लोग अरण्यवास करते थे। नगर से उन्हें कोई लेना-देना नहीं होता था। जङ्गल में घास, फल-फूल ही उनके आहार हुआ करते थे। उनके मन में किसी के प्रति कोई विकार भी नहीं आता था, क्योंकि वे प्रकृति के सानिध्य में रहकर जीवन यापन करते थे। प्रकृति पूर्ण है, पूर्ण के साथ रहकर मनुष्य पूर्ण ही बन जाता है। अतः अपनी पूर्णता प्राप्त करने के लिए प्रकृति का सानिध्य अपेक्षित है। दण्डी ने 'दशकुमारचरितम्' में वामदेव आश्रम के वर्णन में अत्यन्त सोम्यता का वर्णन किया है। जहाँ राजहंस भी पराजित होकर अपने पौरुष विस्तार के लिये गया था।[17] वायु के महनीय गुणों का वर्णन दण्डी ने उस स्थल पर किया है जहाँ घायल राजहंस युद्ध भूमि में पड़ा हुआ रहता है और शीतल वायु के स्पर्श से सचेतन हो जाता है।[18] अतः पवन के कृपा से ही वह जीवित होता है। वायु हमारे जीवन का जीवनीय तत्त्व है। वायुमण्डल में दूषित वायु की मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। जिससे हमारा पर्यावरण प्रभावित हो रहा है। श्वास लेने में आज दम घुटता है। चारों तरफ उद्योगों से विषैली गैस निकलकर पर्यावरण के मजबूत कवच को तोड़ रही है। अभेद्य पर्यावरण में गैसों के खतरनाक आगमन से जीवन संकटग्रस्त होता जा रहा है। अतः पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए वायु को भी सुरक्षित रखना पड़ेगा और वायु के दैवी भाव का उद्घाटन करना होगा। वायुदेव की महती कृपा से ही हम जीवन धारण किये हुए हैं।

हर्षचरितम् में बाणभट्ट तपोवन के रूप में दिवाकरमित्र के आश्रम का उल्लेख किया है, जहाँ पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पतियों का अद्भुत साहचर्य दृष्टिगोचर होता है।[19] यहाँ शुक निर्भय होकर फल खा रहे थे। खरगोशों के शिशुगण पर्वत के कोमल तलों पर सोये हुए थे। मृग निर्भय होकर विचरण कर रहे थे। नेवलों का समूह निःशंक होकर क्रीड़ाएं कर रहा था। मधुर कूँकती हुई कोयलों का समुह कलियों के अंकुरों को खा रहा था। निकटवर्ती गिरितट के जल-प्रपात की कर्ण सुखद ध्वनि से उत्पन्न निद्रा के आनन्द से हाथियों के झुण्डों की दुन्दुभि सदृश कानों की फड़-फड़ाहट शनैः शनैः कम होती जा रही थी। जायफल के वृक्ष के नीचे

---

17. दशकुमारचरितम्, प्रथमोच्छ्वास, पूर्वपीठिका, पृ.22
18. वही, पृ. 18-19
19. हर्षचरितम्, अष्टमोच्छ्वास, पृ. 732

शालिजातक पशुओं का दल सोया हुआ था। इस प्रकार विन्ध्याट्वी में दिवाकरमित्र का आश्रम स्थित था। पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पतियाँ झरनों से रमणीय बना स्थल पूत जीवन का परिचय देने वाला है। हर्ष ने आश्रम को निकट आया जानकर घोड़े से उतर पड़ा और पहाड़ी नदी के जल में हाथ-मुँह धोकर अश्वसेना को वही छोड़ माधवगुप्त के कंधे पर हाथ रखकर पैदल ही चला। वहाँ उसने वृक्षों के बीच में दिवाकरमित्र को देखा और दूर से ही आदरपूर्वक प्रणाम किया।[20] हर्ष ने तपोवन के जीवन को जाना-समझा था। उसे यह ज्ञान था कि ये तापस लोग पर्यावरण के निकटतम् हैं। इनके अंदर भी पर्यावरण सदृश लोकमंगल की भावना भरी होती है। दुनियाँ की सभी संस्कृतियों में पशु-पक्षियों से सम्बन्ध गहरा है क्योंकि उनका सम्बन्ध देवी-देवताओं और समुद्री जीवों को देखने का विशिष्ट नजरिया रहा है। हमारी संस्कृति में हमेशा से उन्हें इंसान के मित्र, वफादार, बुद्धिमान प्राणी और शोभायमान माना गया है। हिन्दू संस्कृति का पशु-पक्षियों से गहरा सम्बन्ध है क्योंकि उनका सम्बन्ध देवी-देवताओं और धार्मिक, आध्यात्मिक विश्वासों से है। भारतीय मान्यताओं के अनुसार पशु-पक्षी भाग्य के भी सूचक हैं। कोयल की सुरीली आवाज को लोग आम की अच्छी पैदावार का शुभ संकेत समझते हैं। नाग को धरती की धन संपदा का रक्षक और संपत्ति का प्रतीक माना गया है। हंस को शरीरात्मा और आध्यात्मिक स्वतंत्रता का प्रतीक समझा गया है। संस्कृत काव्य में भी मनुष्य के मित्र के रूप में पशु-पक्षियों का आकर्षक वर्णन किया गया है। राजाओं ने भी इन्हें अपने राज्य चिह्न के रूप में स्थापित किया है। अतः पशुओं का हमारे संस्कृति में विशेष महत्त्व है। अतः पर्यावरण के लिए सभी जीव-जन्तु रक्षणीय हैं।

'दशकुमारचरितम्' में दण्डी ने एक स्थल पर ध्वनिप्रदूषण के विकराल स्वरूप का भी वर्णन किया है। सभी शब्दों को बढ़ाने वाली युद्ध की वाद्य ध्वनियाँ समस्त दिशाओं में गूंज गयी, जिससे सम्पूर्ण दिशाएं ऐसी बहरी हो गयी कि कुछ सुनाई ही नहीं पड़ रहा था।[21] कवि ने यहाँ स्पष्ट किया है कि वायुमण्डल में ध्वनि सदैव विद्यमान रहती है। शब्द का आश्रय आकाश ही है। अतः आकाश में अत्यधिक ध्वनि भर जाने पर अत्यधिक लोग बहरे हो जायेंगे। किसी का शब्द दूसरे

20. अग्रवाल वासुदेव शरण, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 194

21. दशकुमारचरितम्, प्रथमोच्छ्वास, पूर्वपीठिका, पृ. 11

कर्ण विवर तक स्पष्ट नहीं पहुँच पायेंगे। इस प्रकार ध्वनि पर भी नियन्त्रण रखना चाहिए। दण्डी ने एक स्थल पर घोर अकाल का भी वर्णन किया है। त्रिगर्तनगर में भयंकर अकाल पड़ा हुआ था। इन्द्र ने बारह वर्ष तक निरन्तर वृष्टि न की। धान की खेती क्षीण हो गयी। व्रीह्यादि औषधियाँ निष्फल हो गयी। वृक्षों में फल–फूल नहीं रह गये। मेघ जलहीन हो गये। नदियों का प्रवाह अल्प हो गया। तालाब आदि में केवल पङ्कमात्र अवशिष्ट रह गया। झरनों का बहना बंद हो गया। कन्दमूल–फल आदि की उत्पत्ति में कमी हो गयी। कथा-पुराण कम पढ़े जाने लगे। मंगलचार युक्त श्रेयस्कर अनुष्ठान आदि बन्द हो गये। चोरी में वृद्धि, प्रजा-प्रजा की ही मांस खाने लगी। 'बुभुक्षितं किं न करोति पापम्' की कहावत चरितार्थ होने लगी। मनुष्यों के मुण्ड वलाका पंक्ति के तुल्य इधर-उधर पड़े हुए दिखाई देने लगे। वुभुक्षित कौओं का समूह इधर-उधर घूमने लगा। नगर, ग्राम, छोटे ग्राम और कसबे सभी वीरान दीखने लगे।[22] यहाँ कवि ने पर्यावरण के भयंकर स्वरूप का दर्शन कराया है। पर्यावरण के विकृत स्वरूप का दुष्परिणाम कितना भयानक हो सकता है, कवि इसकी ओर ध्यान आकृष्ट कर मानो हमे सचेत कर रहा है। निश्चित रूप से पर्यावरण का संरक्षण ठीक प्रकार से नहीं किया गया तो सम्पूर्ण पृथ्वी की यही स्थिति बन जायेगी। प्रकृति की सुरक्षा ही पर्यावरण पूजा का स्थायी व्यवहार है। प्रकृति के प्रति पूज्य दैवी भाव रखकर ही हम उसके साथ मर्यादित व्यवहार कर सकते हैं। हम यज्ञ द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करते हैं तो ईश्वर वर्षा के जल से हमें आनन्दित करता है। वृक्षों से पर्यावरण पुष्ट हो समुचित मात्रा में वर्षा कराने का निमित्त बनता है। अतः जीवन धारण के लिए प्रकृति पर्यावरण के प्रति दैवीभाव रखना ही मनुष्य का सर्वोत्तम साधन है। सम्पूर्ण गद्य काव्य में हमे पर्यावरण के प्रति दैवी भाव रखने की प्रेरणा स्वतः मिलती है।

22. दशकुमारचरितम्, षष्ठोच्छ्वास, उत्तरपीठिका, पृ. 341

अध्याय - 4

पद्य-काव्यों में पर्यावरण का दैव स्वरूप

प्रथम खण्ड - महाकाव्य

संस्कृत वाङ्मय में महाकाव्यों का विशेष स्थान है। महाकाव्यों से ही संस्कृत वाङ्मय का वृहद् स्वरूप सामने आता है। इनमें पर्यावरण विषयक तत्त्वों का साङ्गोपाङ्ग उद्घाटन किया गया है। पर्यावरण हमारे जीवन का अविभाज्य अङ्ग है। इसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यह हमें चारों ओर से आवृत्त किये हुए है। इसी के कवच में हम लोगों का जीवन सुरक्षित है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के सम्मिलित स्वरूप को पर्यावरण कहा जाता है। जिस पंच भौतिक तत्त्वों से हमारा शरीर निर्मित है, उसी पंच तत्त्वों से पर्यावरण बनता है। अतः हमारे जीवन में पर्यावरण का विशेष महत्त्व है। पर्यावरण भारतीय संस्कृति का अविभाज्य अङ्ग है। भारतीय संस्कृति से यदि पर्यावरण को अलग कर दिया जाय तो यह एकदम भौतिक, नीरस तथा शुष्क प्रतीत होने लगेगी। प्राचीन भारत में पर्यावरण सन्तुलित था। मानव प्रकृति से घुल-मिलकर एक सरसतापूर्ण स्थिति में जीवन व्यतीत करता था। वह भूतल पर रहकर भी स्वर्ग के आनन्द का अनुभव करता था। वायु से तन और मन दोनों पुलकित हो जाते हैं। यज्ञ हमारे धर्म का एक महनीय अनुष्ठान है। इस जगतीतल पर मानव और देवताओं में एक सुदृढ़ मैत्री बंधन का सर्वश्रेष्ठ उपाय यज्ञ ही है। यज्ञ के द्वारा मनुष्य अपने पर्यावरण को पुष्ट करता है। यज्ञ के धूम में ऐसी शक्ति होती है जिससे पर्यावरण के प्रदूषक तत्त्वों का विनाश हो जाता है। जल अत्यन्त जीवनीय तत्त्व है। मनुष्य को जीवन धारण करने के लिए वायु और जल की अत्यधिक आवश्यकता होती है। यज्ञ से वायु पुष्ट होता है और वायु से अच्छी वर्षा होती है। इस प्रकार तेज, वायु और जल मिलकर एकाकार हो जाते हैं और इन तीनों का आश्रय पृथ्वी एवं आकाश है। यही पंच भौतिक तत्त्वों का समन्वित स्वरूप पर्यावरण है। इससे

हमारी संस्कृति पुष्ट होती रहती है। इस संस्कृति में निष्ठा रखने वाला व्यक्ति चतुर्दिक देवदर्शन करता है। प्राणिमात्र के मंगल की कामना और अमंगल के विनाश की अभिलाषा रखता है।

तपोवन पर्यावरण का प्रतीक है। कल-कल निनादिनी कल्लोलिनी के कूल पर तापसों का निवास है, जहाँ जंगल के पशु अपने स्वाभाविक वैरभाव को भुलाकर परस्पर प्रेमपूर्वक एक-दूसरे के साथ घुल-मिलकर रहते हैं। मृगशावक अपनी माता के आश्रय को छोड़कर ऋषियों की गोद में बैठ कर अपना जीवन धन्य करते हैं। उनसे ऋषियों का मनोविनोद होता है। आश्रम में सायं-प्रातः अग्निहोत्र के धूम से वायु निर्दुष्ट होकर सुवासित होती रहती है। कुशासन पर आसीन ब्रह्मचारीगण वेदाध्ययन करते हैं और अपने कोमल कण्ठ से साम का गायन कर आश्रम में अद्‌भुत माधुर्य तथा सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं। ऋषिगण अपनी पत्नी के साथ रहते हुए भी यम-नियम का पूर्णतः पालन करते हैं। परोपकार ही उनके जीवन का एक मात्र वृत्त होता है। प्राणि-मात्र के कल्याण की बेदी पर उनका जीवन समर्पित होता है। ये ऋषिगण निष्काम भाव से परमार्थिक कार्यों के सम्पादन में रत रहते हैं। राग-द्वेष से रहित शान्तचित्त होकर विश्वशान्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। वे स्वभाववश प्राणियों के कल्याण के लिए सदा जागरूक रहते हैं। नगर से दूरस्थ रहकर भी नगर के समीपस्थ मार्गदर्शन करते हैं। पर्यावरण के प्रति देवत्त्व भाव का उद्‌बोधन करते हैं। प्रकृति सबकी ममतामयी माँ है। यह सबका समान रूप से पालन-पोषण करती है। इस पर किसी व्यक्ति विशेष का नहीं बल्कि प्राणिमात्र का समान अधिकार है। अपने पराये का भेद तो क्षुद्र प्राणियों के ही हृदय में होता है-

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

देववाणी के उपासक कवियों की वाणी से प्रकृति के प्रति सतत् कृतज्ञता का भाव व्यंजित होता रहता है। मानव की चिर सहचारी प्रकृति ईश्वर का अभिव्यक्त स्वरूप है। पुरातन होकर भी नित नवीनतर होते रहना इसकी विशेषता है। ईश्वर की अध्यक्षता में प्रकृति क्रियाशील रहती है। वह सर्वनियामक है। उसकी कृपा के विना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। इसलिए कवियों की वाणी इसके अभिनन्दन

में सतत् स्फुरित होती रहती है। महाकवि भारवि ने पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश को शिव का स्वरूप बतलाते हुए किरातार्जुनीयम् के अन्त में लिखा है -

'तरसा भुवनानि यो विभर्ति ध्वनति ब्रह्मयतः परपवित्रम्।

परितो दुरितानि यः पुनीते शिव तस्मै पवनात्मने नमस्ते'।।[1]

अर्थात् जो वायु बलपूर्वक जगत् का पोषण करता है। जिस वायु से वर्णात्मक परब्रह्म ध्वनि रूप से प्रकट होता है। जो पवन चारों तरफ पापों को दूर करता है। पवनात्मक स्वरूप उस शिव को नमस्कार है।

'भवतः स्मरतां सदासने जयिनि ब्रह्ममये निषेदुषाम्।

दहते भवबीजसंतति शिखिनेऽनेकशिखाय ते नमः'।।[2]

अर्थात् अग्नि सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म प्राप्ति साधक योगासन पर आरुढ तथा आपके ध्यान में संलग्न योगियों के जन्म-मरण के कारण भूतकर्मों के समूह को जो भस्म कर डालता है, उस अनेक शिखा विशिष्ट अग्निमूर्ति आप (शिव) को नमस्कार है-

'आपाधामरणभयार्चिषा चिरायप्लुष्टेभ्यो भव महता भवानलेन।

निर्वाणं समुपगमेन यच्छते ते बीजानां प्रभव नमोऽस्तु जीवनाय'।।[3]

अर्थात् हे शिव! हे बीजों के कारण, आध्यात्मिक दुःख एवं मरण रूप ज्वाला वाले महान् संसाराग्नि से जलते हुए मनुष्यों की सेवा से प्रसन्न होकर मुक्ति को देने वाले जल स्वरूप आपको (शिव को) नमस्कार है -

'यः सर्वेषामावरीता वरीयान् सर्वेर्भावैर्नावृतोऽनादिनिष्ठः।

मार्गतीतायेन्द्रियाणां नमस्तेऽविज्ञेयाय व्योमरूपाय तस्मै'।।[4]

अर्थात् हे नभ! जो विभु है तथा सम्पूर्ण वस्तुओं का आच्छादनकारी है। सभी भूतों से अनावृत है एवं अनादि से स्थित है। इन्द्रियों से परे है। उस दुर्जेय आकाशात्मक (शिव) आपको प्रणाम है।

---

1. किरातार्जुनीयम्, 18/37
2. वही, 18/38
3. वही, 18/39
4. वही, 18/40

'अणीयसे विश्वविधारिणे नमो नमोऽन्तिकस्थाय नमो देवीयसे।
अतीत्यं वाचां मनसां च गोचरं स्थिताय ते तत्पतये नमोनमः'।।[5]

अर्थात् हे भव! सूक्ष्मातिसूक्ष्म होते हुये भी विश्वधारक कर्त्ता आपको नमस्कार है। अन्तर्यामी होने से अत्यन्त सन्निकट होते हुए भी अत्यन्त दूर स्थित आपको नमस्कार है। वचन और मन से परे रहते हुए और सभी इन्द्रियों के अधिपति आपको नमस्कार है।

कवि का हृदय प्रकृति के पंचतत्त्वों में शिवस्वरूप का दिग्दर्शन कर रहा है। यही कारण है कि उसकी वाणी शिवत्वभाव से ओत-प्रोत होकर उसका स्तवन कर रही है। ये तो शिव स्वरूप है। इनका अनावश्यक दोहन मत करो, बल्कि कृतज्ञतापूर्वक सदुपयोग करो, अन्यथा सम्पूर्ण सृष्टि संकट में पड़ जायेगी। इसी आशय से कवि ने इन प्राकृतिक तत्त्वों में देवत्त्व का दर्शन किया है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन हुआ है। इसीलिए इनकी सुरक्षा करना हम मानव का सहज कर्त्तव्य है।

आज दिन-प्रतिदिन पर्यावरण का संकट उत्पन्न हो रहा है। सम्पूर्ण विश्व इस संकट से प्रभावित हो रहा है। कहीं वर्षा का अभाव तो कहीं अतिवर्षा का दुष्प्रभाव दिखायी दे रहा है। कहीं आंधी तूफान आ रहा है, तो कहीं वायु के अभाव में प्राणवायु का भी संकट उत्पन्न हो गया है। हम प्राकृतिक साधनों का अपने सुख-सुविधा के लिए अनेक प्रकार से उपयोग नहीं बल्कि दुरूपयोग कर रहे हैं। कहीं वृक्षों को काट कर वनों में उद्योग लगाये जा रहे हैं, तो कहीं नदियों में अपसर्जित पदार्थ छोड़े जा रहे हैं। प्राकृतिक संसाधनों का विनाशकारी दोहन किया जा रहा है। पेट्रोल, डीजल, गैस का हम निःसंकोच अनियन्त्रित रूप से उपयोग कर रहे हैं। इनसे वायुमण्डल में प्रदूषित गैसों की मात्रा बढ़ रही हैं। ओजोन परत का छिद्र फैल रहा है, हम अपने आवश्यकता को सीमित नहीं करना चाहते हैं। वाहन के बिना हम एक पग भी नहीं चल सकते, चलने के लिए वाहन आवश्यक है। कोई कार्य हम अपने शरीर से नहीं करना चाहते, मशीन से ही करते हैं। पहले घरों में आटा और चावल हाथ से तैयार किया जाता था, घरों में मसाला हाथ से पीसा जाता था, भोजन लकड़ी की आग पर तैयार होता था। सभी कार्य मनुष्य स्वयं अपने हाथों से करता था, लेकिन आज

5. किरातार्जुनीयम्, 18/41

सभी कार्य के लिए उसके पास मशीन है। आज के मानव को जीवन-यापन के लिये मशीन का होना आवश्यक है। हम मशीन के विरोधी नही हैं, लेकिन जो हम स्वयं कर सकते हैं, उन्हें मशीन के आश्रित क्यों छोड़ें? मशीन के कारण अकर्मण्यता आ गयी है और अकर्मण्यता से हमारा शरीर प्रतिदिन निर्बल होता जा रहा है।

पुराकाल में लोगों के सुस्वास्थ्य का रहस्य प्रकृति के सुरम्य वातावरण में निवास तथा शारीरिक स्तर पर सभी कार्यों का निष्पादन करना था। परन्तु आज का मानव प्रकृति से दूर रहकर कृत्रिम जीवन शैली का अभ्यासी हो गया है। हम भौतिकवादी संस्कृति में आसक्त होकर यन्त्रों के दास हो चुके हैं। यन्त्र की सहायता के बिना हमारा तन-मन कुछ भी करना नहीं चाहता है। यही कारण है कि आज का मानव समाज सम्वेदना शून्य होता जा रहा है। वाह्य चाकचिक्य से आकृष्ट होता हुआ मानव भौतिकवादी अपसंस्कृति की गोद में अपने को सौंप कर आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तापों से संतप्त हो रहा है। वह विभ्रान्त एवं विश्रान्त होकर ऋषियों की त्यागपूर्वक जीवन-यापन की कला को विस्मृत कर चुका है -

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चजगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'।।[6]

'यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वरमय है। अतः प्राकृतिक संसाधनों का त्यागपूर्वक भोग करो, किसी के धन की इच्छा मत करो, यही सम्पूर्ण मानव समाज के लिए ऋषियों का शाश्वत मंगलमय उद्घोष है। पहले हम प्रकृति का उपभोग अपनी आवश्यकता के अनुरूप किया करते थे, किन्तु आज हम अपने भोग-विलास में आकण्ठ निमग्न होकर त्यागमूलक देव संस्कृति से विमुख होकर जिस डाली पर बैठे हैं, उसी डाली को काट रहे हैं। जैसे शिशु माँ के स्तन से दुग्धपान करता है। इस दुग्धपान से माता और शिशु दोनों का तन-मन स्वस्थ और सुगठित रहता है। यदि वह दुग्धपान न कर रक्तपान करने लगे तो दोनों का ही जीवन दुःखद होकर समाप्त हो जायेगा। प्रकृति हमारी माँ हैं, अतः मातृवत् भाव रखते हुए आवश्यकतानुसार प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग करते रहे, जिससे हमारा पर्यावरण भी संरक्षित एवं प्रदूषण मुक्त बना रहे।

---

6. ईशावास्योपनिषद्, 1

हरे-भरे उपवन और वन्य जीवों से युक्त जंगल प्रकृति के केवल शोभादायक साधन मात्र नहीं हैं, वरन् प्राप्त ईश्वरीय वरदान हैं। इनसे हमारा जीवन पालित-पोषित होता है। बलखाती कलकल निनाद करती नदियाँ तन-मन का केवल रंजन ही नहीं करती बल्कि शाश्वत जीवन का सन्देश भी देती हैं। पृथ्वी मृण्मय कणों का सम्मिश्रण मात्र ही नहीं बल्कि चिन्मयस्वरूपिणी भी है। यही कारण है कि समस्त प्राणी इसके प्यार भरी गोद में सहज ही जीपन धारण करते हुए पालित-पोषित होते रहते हैं। वायु केवल गैसों का झोंके मात्र ही नहीं हैं अपितु तन-मन को सुरक्षित एवं पुलकायमान करने वाले जीवन को परम ऊर्जा प्रदान करने वाले तत्त्व हैं। आकाश सबके आश्रय का सामर्थ्य रखता है। ये सभी प्राकृतिक तत्त्व प्राणियों के जीवन के सम्वर्धन एवं संरक्षण में महती भूमिका का निर्वहन करते हैं। ये हमारे जीवन के पालनहार हैं। अतः इनके दैव स्वरूप से अपरिचित होना अपने सर्वनाश को आमन्त्रित करना है। महाकवि कालिदास अभिज्ञानशाकुन्तल के नान्दी पाठ में प्रकृति के आठ तत्त्वों को शिव का प्रत्यक्ष स्वरूप बतलाकर सबके रक्षा की कामना करते हैं तो कुमारसम्भव में भगवान् सदाशिव को अष्टमूर्ति वाला कहकर अभिनन्दन करते हैं -

'तत्राग्निमाधाय समित्समिद्धं स्वयमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः।

स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार'।।[7]

अर्थात् तप के फलों का स्वयं विधान करने वाले अष्टमूर्ति शंकर वहाँ अपने ही शरीरभेदरूपी काष्ठप्रदीप्त अग्नि को स्थापित करके किसी इच्छा से तपस्या करने लगे। यहाँ भी शिव को अष्टविध मूर्तियों का प्रतीक माना गया है। ये अष्ट प्रतीकात्मक तत्त्व जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चंद्र, आकाश, पृथ्वी और वायु ही हैं।

पार्वती और परमेश्वर सम्पूर्ण जगत् के माता-पिता हैं महाकवि वाणी और अर्थ की भाँति मिले हुए उनकी (पार्वती-परमेश्वर) वन्दना करता है। भला जिस जगत् की जननी जगदम्बा एवं पिता साक्षात् महादेव हों, उस जगत् के दैवी स्वरूप के विषय में किसको सन्देह हो सकता है? भारवि और कालिदास दोनों कवि सम्पूर्ण प्राकृतिक तत्त्वों में शिवत्व का दर्शन करते हुए विश्व मानव को दिव्य चक्षु प्रदान

---

7. कुमारसम्भवम्, 1/57

कर रहे हैं। महर्षि वेदव्यास भी शिव के प्रत्यक्ष आठ रूपों का वर्णन करते हैं -

'सूर्यो जलं महीवायुर्वह्निराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात्'।।[8]

अर्थात् प्रजापति ही रुद्र के नाम रखे और इसके स्थान भी निश्चित किये। सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण और चन्द्रमा ये क्रमशः उस रुद्र की मूर्तियाँ हैं। यहाँ रुद्र नाम शिव के लिए प्रयुक्त हुआ है। मनुस्मृति में भी जल को सर्वप्रथम सृष्टि कहा गया है -

'सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुविविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवा सृजत्'।।[9]

अर्थात् उस परमेश्वर ने अनेक प्रकार के शरीरादि रचने की इच्छा करके अपने देह से पहले जल उत्पन्न किया और फिर उसमें बीज डाला। तभी से सृष्टि प्रारम्भ हुई। अतः सृष्टि का प्रथम कारण जल ही है। कहने का आशय यह है कि जल इत्यादि अमूल्य तत्त्व हैं। इनकी रक्षा करनी चाहिए। इसकी पूजा करनी चाहिए। पूजा समर्पण का भाव है। इससे हमारा जीवन संचरित होता है। जल हमारे पूजनीय हैं, आदरणीय हैं। नदियों को माता का पद दिया गया है। माता सदैव पुत्र की रक्षिका होती है। कालिदास ने सरयू नदी को माता के रूप में चित्रण किया है।[10] नदियों के जल को तीर्थ माना जाता है। गङ्गा और सरयू के संगम के सम्बन्ध में रघुवंश में कहा गया है -

'तीर्थे तोयव्यातिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वोर्देह-
त्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः।
पूर्वाकाराधिकतररुचा संगतः कान्तयाऽसौ
लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु'।।[11]

---

8. विष्णुपुराण, 1/8/7
9. मनुस्मृति, 1/8
10. रघुवंश, 13/63
11. वही, 8/95

अर्थात् महाराज अज गङ्गा तथा सरयू नदियों के जल के मिश्रण से बने हुए तीर्थ अर्थात् दोनों के संगम में देह त्याग करने से तत्काल देवत्त्व को प्राप्त किये और पहले की आकृति से अधिक सुन्दरी प्रिया के साथ नन्दन वन के भीतर लीला मंदिर में रमण करने लगे। वह संगम इतना दिव्य है कि महाराज अज ने उसी संगम के जल में शरीर त्याग करते हैं। कवि इस वर्णन के माध्यम से नदियों के संगम स्थलरूप तीर्थ की महिमा गान करना चाहता है। पवित्र जल के कारण ही वे तत्क्षण देवत्त्व को प्राप्त हो गये और अपने इच्छित कामना को भी नन्दन वन में प्राप्त किये। कवि का भाव यही है कि यह सामान्य जल नहीं है, यह तो परम पवित्र है। इसके स्पर्श मात्र से मनोकामना स्वतः पूर्ण हो जाती हैं। गङ्गा, यमुना के संगम के सन्दर्भ भी कालिदास ने कहा है -

'समुद्रपत्न्योर्जलसंनिपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तत्त्वावबोधेन विनाऽपि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः'।।[12]

यहाँ रामचन्द्र जी जानकी से कहते हैं कि गंगा और यमुना के संगम में स्नान करके पवित्र हुई आत्मा वाले को ज्ञान प्राप्ति के बिना भी मरने पर पुनः शरीर धारण नहीं करना पड़ता है। इनमें स्नान मात्र से ही मुक्ति मिल जाती है। कवि का आशय यही है कि ये सामान्य नदी नहीं प्रत्यूत अपितु अमृतवाहिनी देवियाँ हैं। इनमें स्नान मात्र से ही जीव इस भवसागर से पार हो जाता है। इसमें हम सभी मानव दैवी भाव रखें, इसका संरक्षण करें। कहा जाता है कि बिना सत्य का ज्ञान हुए मनुष्य को जन्म-मृत्यु से छुटकारा नहीं प्राप्त होता है। सत्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई वर्षों तक त्यागपूर्वक साधना करनी पड़ती है। साधना करने पर भी ज्ञान हो जाय यह निश्चित नहीं है, लेकिन माँ गङ्गा और यमुना में एक बार स्नान कर लेने से मनुष्य इस दुःखात्मक संसार के आवागमन के चक्र से पार होकर परम ब्रह्म में विलीन हो जाता है। जल प्रदूषण की विभिषिका की ओर संकेत करते हुए भारवि का कथन है -

'आकीर्णं बलरजसा धनारुणेन प्रक्षोभैः सपदि तरङ्गितं तटेषु।
मातङ्गन्मथितसोजरेणुपिङ्गमाञ्जिष्ठं वसनमिवाम्बु निर्वभासे'।।[13]

12. रघुवंश, 1/58
13. किरातार्जुनीयम, 7/36

अर्थात् जाह्नवी का जल जो अत्यन्त अरुण वर्ण की सेना सम्बन्धिनी धूल से भर गया था और क्षुब्ध होने से तट पर हिलोरे ले रहा था। गङ्गा का जल लाल वर्ण का हो गया है फिर भी हाथियों की क्रीड़ा से उन्मथित कमल के पीले पराग से मिश्रित होकर वह मजीठ के रंग में रंगे हुए वस्त्र की तरह दिखलाई पड़ने लगा। वहीं भारवि ने गङ्गा को देव सरिणि संज्ञा देते हुए लिखा है -

'अथस्फुरन्मीनविधूतपङ्कजा विपङ्कतीरस्खलितोर्मिसंहति।

पयोऽवगाढुकलहसंसनादिनी समाजुहावेववधु सुरापगा'।।[14]

देवनदी (गङ्गा) में मछलियों की चिलक से कमल हिल रहे थे, उनमे कीचड़ नाम मात्र का भी नहीं था। एक के बाद एक लहरों का तांता लगा हुआ था। कलहंस कलकुंजन कर रहे थे। इन सब बातों से मालूम पड़ता था मानो गङ्गा उन सूर वधूटियों को जल में स्नान करने के लिए बुला रही है। इन दोनों स्थलों पर गङ्गा का ही वर्णन किया गया है। एक प्रदूषण युक्त है तो दूसरा प्रदूषण मुक्त। एक स्थल पर गङ्गा की क्या स्थिति हो गयी है और दूसरे स्थल पर उसके रमणीय स्वरूप से देवत्त्व का बोध होता है। शिशुपालवधम् में कवि माघ ने पहाड़ी नदियों के निर्मल स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है -

'अपशङ्कभङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपेतुमात्मजा।

अनुरोदितीव करूणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः।।[15]

पहाड़ी नदियाँ कल-कल शब्द करती हुई बह रही हैं। ये निडर होकर उसकी गोद में लोट-पोट किया करती हैं। अतः वे रैवतक की बेटियाँ हैं। आज वे अपने पति समुद्र से मिलने के लिए जा रही हैं। इस कारण रैवतक पक्षियों के करुण स्वर के द्वारा जान पड़ता है कि प्रेम के कारण रैवतक रो रहा है। कन्या के पति गृह जाने के समय पिता का हृदय पिघल जाता है। वह कितना भी कठोर हो द्रवीभूत अवश्य हो जाता है। अतः रैवतक भी पक्षियों के करुण स्वर से कन्याओं के लिए रो रहा है। ठीक ही है पिता का हृदय कोमल हुआ करता ही है। यहाँ कवि नदियों को रैवतक की पुत्री बतलाया है समुद्र को पति। यहाँ रैवतक भी देवत्त्व का बोधक है।

---

14. किरातार्जुनीयम, 8/95

15. शिशुपालवधम्, 4/47

नदियाँ और समुद्र भी दैवस्वरूप ही माने गये हैं। रावण के अत्याचार से व्यथित देवता लोग दुष्टों के दमन के लिए समुद्रवासी विष्णु के पास गये।[16] माघ ने जल को कृष्ण के स्वरूप में प्रदर्शित करते हुए लिखा है -

'चतुरम्बुधिगर्भधीरकुक्षेर्वपुषः सन्धिषुलीनसर्वसिन्धोः।

उदगुः सलिलात्मनस्त्रिधाम्नो जलवाहावलयः शिरोरुहेभ्यः'।।[17]

चारों ओर समुद्र है भीतर जिसके ऐसे गंभीर उदर वाले सन्धियों में लीन हुई समस्त नदियों वाले जलात्मक और तीन धामों वाले अर्थात् लोकत्रय व्याप्त श्रीकृष्ण भगवान् के केशों से मेघ श्रेणियाँ निकल पड़ी। यहाँ कृष्ण को जल रूप में उपस्थित किया गया है। श्रीकृष्ण को जल स्वरूप बतलाकर कवि जल को महिमामण्डित कर प्रकारान्तर से जल संरक्षण का प्रशिक्षण देना चाहता है। जलाशय का वर्णन करते हुए माघ ने कहा है -

'आत्मानमेव जलधेः प्रतिबिम्बताङ्गमूमोमहत्यभिमुखापतितं निरीक्ष्य।

क्रोधादधावदपभीरभिहन्तुमन्य नागाभियुक्त इव युक्तमहो महेभः'।[18]

अर्थात् जलाशय के तरंग में प्रतिविम्बित शरीर वाले सामने पड़े हुए अपने को देखकर मानो दूसरे हाथी आक्रान्त के समान गजराज निर्भय हो मारने के लिए क्रोध से दौड़ा। अहो! उसकी मूर्खता आश्चर्यजनक है परन्तु गजराज के लिए यह उचित है। यहाँ कवि ने निर्मल जलाशय की ओर संकेत किया है। यहाँ कवि कालिदास द्वारा अपने सामर्थ्य के अनुरूप जलपूरित घड़ों द्वारा तापस बालाओं द्वारा बालवृक्षों का सिंचन क्रिया का कितना मनोहारी और आह्लादक वर्णन किया गया है -

'पयोघटैराश्रमबालवृक्षान्संवर्धयन्ती स्वबलानुरूपैः'।[19]

वाल्मीकि आश्रम में पहुंचने पर सीता अपनी शक्ति के अनुसार जल के घड़े से आश्रम के छोटे-छोटे वृक्षों को अभिसिंचित कर संवर्धित करती हैं। जल के बिना वृक्ष निष्प्राण हो जायेंगे। जल ही वृक्षों को बढ़ाने वाला तत्त्व है। मनुष्य और

16. रघुवंश, 5/32
17. शिशुपालवधम् 20/66
18. वही, 18/39
19. रघुवंश, 14/78

वृक्ष के लिए जल समान रूप से उपयोगी है। मेघदूत में कालिदास ने लिखा है कि जलवर्षी मेघ (जल) सन्तप्त जनों का रक्षक है -

'संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद'।[20]

कुमारसम्भवम् में कालिदास ने लिखा है कि जिस तरह निरन्तर निर्मल प्रवाह से युक्त तथा समुद्र की लहरों तक पहुंची हुई पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ अपनी पवित्रता से सभी लोगों को पवित्र बनाती हैं, उसी तरह तुम्हारी कीर्ति भी लोकों को पवित्र बनाती है -

'अच्छिन्नामलसंतानाः समुद्रोर्म्यनिवारिताः।

पुनन्तिलोकान्पुण्यत्वात्कीर्तयः सरितश्चते।।[21]

अन्य स्थल पर कालिदास ने नदियों की पवित्रता को बनाए रखने के लिए सन्देश देते हुए लिखा है -

गङ्गावारिणि कल्याणकारिणि श्रमहारिणि।

स मग्नोनिर्वृतिंप्रापपुण्यभारिणितारिणि'।।[22]

गङ्गा जी का पवित्र जल जन-जन का कल्याण करने वाला है। इसकी सुरक्षा करना हम मानवों का परम कर्त्तव्य है। कालिदास ने एक अन्य स्थल पर लिखा है -

'कं नाभिनन्दयत्येषादृष्टापीयूषवाहिनी'।[23]

अर्थात् अमृत भरी गङ्गा को देखकर भला कौन आनन्दित नहीं होता है। जल आनन्द का प्रतीक है। नदी का प्रवाहात्मक जल मन को तत्काल प्रफुल्लित कर देता है। रघुवंश में कालिदास ने अगस्त ऋषि को वर्षा के गंदे जल को स्वच्छ करने वाला बतलाते हुए लिखा है -

'तस्यविलाम्भः परिशुद्धिहेतोर्भौमो, मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम्'।[24]

---

20. मेघदूत, पूर्व/7
21. कुमारसम्भवम्, 6/69
22. वही, 10/36
23. वही, 10/48
24. रघुवंश, 13/36

अर्थात् ये ही अगस्त ऋषि उदय होते हैं, तब वर्षा का सारा गंदा जल स्वच्छ कर दिया जाता है। स्वच्छ जल हमारे जीवन के लिए अनिवार्य है। अशुद्ध जल के सेवन से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसीलिए कालिदास ने रघुवंश में मन्दाकिनी के स्वच्छ जल का वर्णन किया है -

'एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।

मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः'।।[25]

यह लो मन्दाकिनी आ गयी। इसका जल कैसा निर्मल और धीरे-धीरे बह रहा है। यह स्वच्छ और स्थिर जल की स्थिति होती है। किरातार्जुनीयम् महाकाव्य् में पर्यावरण के मनोरम पक्षों पर दृष्टिपात करते हुए कवि लिखता है कि सरिताओं और सरोवरों का जल शरदऋतु में स्वच्छ हो जाता है। बादल भी जलहीन हो जाते हैं।[26] आकाश में विहग मधुर शब्द करते हुए निर्बाध विचरण करते हैं। मन्द-मन्द सुगन्ध पवन का प्रवाह प्रसन्नता प्रदान करता है।[27] खेतों का जल कमलिनी की कान्ति से अत्यन्त शोभित, रक्त कमलकान्ति से मिश्रित तथा धान की बालों से पीत वर्ण को धारण करता हुआ इन्द्रधनुष की शोभा को प्राप्त कर रहा है -

'मृणालिनीनामनुरञ्जितं त्विषाविभिन्नमम्भोज पलाशशोभया।

पयः स्फुरच्छालिशिखापिशङ्गितं द्रुतं धनुष्खण्डमिवाहिविद्विषः'।।[28]

यहाँ भारवि ने शरद ऋतु के वर्णन में पर्यावरण के दिव्य स्वरूप का वर्णन कर सर्वत्र पवित्रता का वितान खड़ा कर दिया है। कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के हम उस स्थल का उल्लेख करना चाहते हैं, जहाँ वरतन्तु शिष्य कौत्स महाराज रघु के यहाँ पहुँचता है। राजा द्वारा आश्रमवासियों के कुशल क्षेम के प्रसंग में पूछे गये प्रश्नों में पर्यावरण संरक्षण के महत्व की अभिव्यञ्जना देखने योग्य है -

'आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम्।

कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो वः श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम्'।।[29]

---

25. रघुवंश, 13/48
26. किरातार्जुनीयम् 4/21– जयश्रियं पार्थ पृथूकरोति ते शरत्प्रसन्नाम्बुरनम्बुवारिदा।
27. वही, 4/35 अमी समुद्धूतसरोजरेणुना हृता हृतासारकणेन वायुना।
28. वही, 4/27
29. रघुवंश, 5/6

अर्थात् क्यारी बाँधना, जल देना आदि उपायों से पुत्र के सामान बढ़ाये गये हुए जो पथिकों के थकावट को दूर करने वाले आप लोगों के तपोवन के वृक्ष हैं उन सब को झंझावात-दावानल आदि उपद्रवों से कोई बाधा तो नहीं पहुँचाते। महाराजा रघु के इस वक्तव्य से यह तथ्य सामने आता है कि प्राचीन समय में एक राजा भी पर्यावरण के प्रति कितना सजग है। आज के राजा के लिए वृक्ष-वनस्पतियों और तपोवन के सम्बन्ध में जानने और पूछने का समय कहा है? इन्हें तो हरे-भरे वन्यप्रदेश को उजाड़कर कंकरीट, पत्थर के शुष्क जंगल बनाने की धुन लगी हुई है। शहरीकरण के विस्तार में पूर्णतः संलग्न हैं। आज हमारे जीवन का मूल्य बदल गये हैं। हमे भौतिक संसाधनों की इतनी फिक्र है कि आने वाली सन्तति को प्राकृतिक संसाधन विहीन कर देना चाहते हैं। प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं। पेट्रोल, डीजल, गैस एक दिन सब कुछ समाप्त हो जायेंगे। यहीं स्थिति रही तो जल, वायु सभी दूषित हो जायेंगे। वृक्षों का उगना बन्द हो जायेगा। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के समानुवातिक सम्मिलन से ही सृष्टि का जन्म होता है। इनके असंतुलन से सम्पूर्ण सृष्टि भयाक्रान्त हो जायेगी। अतः आज के जन-प्रतिनिधियों को वनप्रदेश एवं वन्य जीवों को संरक्षित कर पर्यावरण को संतुलित बनाना होगा। प्राणप्रण से इसकी सुरक्षा करनी होगी। आश्रमवासी विश्वामित्र के साथ जब राम और लक्ष्मण आश्रम जा रहे थे उस समय पर्यावरण की झलक कालिदास के शब्दों में देखें -

'तौ सरांसि रसवद्भिरम्बुभिः कूजितैः श्रुतिसुखै पतत्त्रिणः।

वायवः सुरभिपुष्परेणुमिश्छायया च जलधः सिषेविरे'।।[30]

अर्थात् तड़ागों ने मधुर जल से पक्षियों के कानों के सुखप्रद मधुर कलरव से वायु ने सुगन्ध युक्त पुष्पपराग से और मेघों ने छाया से उन राम और लक्ष्मण दोनों की सेवा किये। यहाँ कवि ने सुखद यात्रा का वर्णन किया है। तड़ागों में मधुर जल था, जिसका पान किया जा सकता था, वह निर्मल एवं शुद्ध भी था, रूचिर भी था। मनोरंजन के लिए पक्षियाँ मधुर स्वर से कलरव कर रही हैं। वायु वृक्षों के संसर्ग से सुगन्धित हो गया है। जल से भरे हुए बादल भी हर्षित कर रहे हैं। रघुवंश महाकाव्य में अनेक स्थलों पर कवि ने पशु-पक्षियों, वृक्ष, वनस्पतियों का

30. रघुवंश, 11/11

वर्णन किया है।[31] पशु-पक्षियाँ, वृक्ष-वनस्पतियाँ सभी जङ्गल के प्रतीक हैं। सभी का पर्यावरण सन्तुलन में अपना विशेष योगदान है। शिशुपालवधम् में माघ ने पलाश के वृक्ष का स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है।[32] भट्टि ने अपने काव्य के द्वितीय सर्ग में वृक्ष और सरोवर का आकर्षक वर्णन किया है। सरोवरों के तट पर वृक्ष शोभायमान हो रहे थे।[33] सरोवर का जल और तट पर वृक्षों की छाया सुखद अनुभूति के स्थल माने जाते हैं। वृक्ष और सरोवर दोनों भारतीय परम्परा में देवतुल्य हैं। इसीलिए कवि ने दोनों का एक ही स्थल पर चित्रण किया है। कालिदास द्वारा वर्णित रमणीय पर्वतीय झरनों का एक दृश्य द्रष्टव्य हैं -

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।

तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषवे'।।[34]

पहाड़ी झरनों के जल बिन्दुओं से युक्त अतएव शीतल तथा वृक्षों के कुछ-कुछ खिले हुए फूलों के गन्ध को लेता हुआ मन्द-मन्द सुगन्धित वायु व्रत करने से छत से रहित अतएव घाम (धूप में) में मुरझाए हुए सदाचार से पवित्र उस राजा दिलीप की सेवा करने लगा। कवि ने पहाड़ी झरनों का ह्रदयहारी वर्णन किया है। ऐसे वर्णन हमे पर्यावरण संरक्षण के लिए बड़े ही प्रेरणादायी हैं। गङ्गा के तट पर घास-पुष्प भी हमारे पर्यावरण के प्रतीक हैं।[35] गङ्गा हमारी आस्था की केन्द्र बिन्दु है। कोई भी कवि अपने काव्य में गङ्गा का बिना स्तवन किये अपने कविकर्म से प्रसन्न नहीं होता है। सभी लोग गङ्गा के गोद में अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए आतुर दिखलाई पड़ते हैं। गङ्गा पहाड़ों और जङ्गलों का पार करती हुई अपनी बाहों में सबको समटे हुए है। जङ्गल और नदी दोनों हमारे संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। बुद्धचरितम् के एक स्थल पर अश्वघोष ने लिखा है -

'स जरामरणक्षयं चिकीर्षुवनवासाय मतिं स्मृतौ निधाय'।[36]

---

31. रघुवंश, 3/39, 14/39
32. शिशुपालवधम्, 6/2
33. भट्टिकाव्य, 2/4
34. रघुवंश, 2/13
35. वही, 2/26
36. बुद्धचरितम, 5/23

अर्थात् जरा-मरण का क्षय करने की इच्छा से वन में निवास करने का द्र ने निश्चय किया। जङ्गल सामान्य नहीं हैं, ये तो दैवी स्थल हैं। जहाँ मनुष्य ाधियों से मुक्त होकर सुखपूर्वक निवास करते हैं। प्राचीन समय में अनेक राजा ग अपने वृद्धावस्था में अरण्यवास करते थे। अरण्य में ही तपस्यारत रहकर अपने कल मन को शान्त करते थे। भारवि ने अर्जुन के द्वारा शिव की तपस्या के समय नेक पर्यावरणीय घटकों का स्वाभाविक वर्णन किया है -

'नुनोद तस्य स्थलपद्मिनीगतं वितर्कमाविष्कृतफेन संतति।

अवाप्तकिञ्जकविभदेमुच्चकैर्विवृत्तपाठीनपराहतं पयः'।।[37]

कहीं-कहीं सरोवर के जल जिनमें विकचारबिन्द (खिले हुए कमल) शोभित हो रहे थे। फेन और कमल पराग से आच्छादित थे। जिन्हें देखकर अर्जुन पृथ्वी पर खिले हुए गुलाब के पुष्प का भ्रम हो रहा था। ऊपर की ओर ल्लुण्ठन करते हुए पानी में अभितप्त होकर पुष्प, पराग और फेन राशि के हट ने से जल दिखलाई पड़ने लगता है। जिससे अर्जुन को संशय हो गया। आगे आतप रहित वायुमण्डल और कमल सौरभ का वर्णन किया गया है -

'अदीपितं वैद्युतजातवेदसा सिताम्बुदत्तछेदति रोहितातपम्।

ततान्तरं सान्तरंवारिसीकरैः शिवनभोवर्त्म सरोज वायुभिः'।।[38]

आकाशमार्ग विद्युताग्नि से संतप्त नहीं हो रहे हैं और शुभ्र बादलों के ण्डों से सूर्य आतप भी छिपा हुआ है। आकाश का अन्तराल विरल-विरल जल णों से व्याप्त हो रहा है। कमलों की सुरभित गन्धि से आकाश पथ बहुत रमणीय गया है। कहने का अभिप्राय है कि सम्पूर्ण वायुमण्डल में कमल सौरभ व्याप्त हो ा है, प्राणवायु पुष्ट हो गयी है, वायु शुद्ध है। आगे भी पर्यावरण के दिव्य स्वरूप उल्लेख करते हुए कवि कहता है -

'तमतनुवनराजिश्यामितोपेत्यकान्तं नगमुपरिहिमानी गौरमासाद्यजिष्णु।

व्यपगत मदरागस्यानुसस्मार लक्ष्मीसितमधरवासो विभ्रतः सीरपाणेः।।[39]

किरातार्जुनीयम्, 4/5

वही, 4/29

वही, 4/38

सुन्दर विस्तृत वनों की पंक्तियों से नीलवर्ण के उपत्य प्रदेश से घिरे हुए वर्फ की चट्टानों से ढके हुए शुभ्र हिमालय पर पहुँचकर अर्जुन को मदिरा के राग से युक्त नीलाम्बर धारी सीरपाणी वलभद्र जी की शोभा का स्मरण हो गया है। ये जंगल दैवीभाव से भावित करने वाले हैं। हिमालय के सौरभ का वर्णन करते हुए कवि कहता है -

'पृथुकदम्बकराजितं ग्रथितमालात्मालावना कुलम्।

लघुतुषारतुषार जलश्च्युतं घृत सदाननदन्तिनम्।।[40]

यह हिमालय बड़े-बड़े कदम्ब के पुष्पों से सुशोभित हो रहा है। यह गुथे हुए पुष्प माला के सदृश तमाल के वनों से व्याप्त है। बिन्दु-बिन्दु हिमजल इस पर से परिश्रवण कर रहा है। इस हिमालय पर मदस्रावी और सुन्दर शुण्ड-भुशुण्ड वाले हाथी विचरण कर रहे हैं। कवि ने इन स्थलों के माध्यम से यह संकेत देना चाहता है कि वृक्ष, वनस्पतियाँ, नदी, पहाड़, पशु-पक्षी सभी पर्यावरण के अनिवार्य तत्त्व हैं, सबका इस धराधाम पर होना अति आवश्यक हैं। सरस वायु का वर्णन करते हुए अश्वघोष ने भी लिखा है कि -

वातावुः स्पर्शसुखा मनोज्ञादिव्यानि वासास्यवपातयन्तः।

सूर्यः स एवाभ्यधिकं च काशे जज्जवाल सौम्यार्चिरनीरितोऽग्नि।।[41]

अर्थात् स्पर्श से आनन्द देने वाली एवं मन को लुभाने वाली वायु उत्तम वस्त्रों की वर्षा करती हुई बहने लगी। वहीं सूर्य अत्यधिक तेजस्वी हुआ मानो बिना द्यौ के अग्नि सौम्य शिखा सहित जलने लगी। कवि भट्टि ने भी शुद्ध वायु का वर्णन किया है।[42] जीवनदायिनी प्राणवायु की सुरक्षा वृक्षों की सुरक्षा से ही सम्भव है। कहा ही जाता है कि 'वृक्ष धरा के भूषण हैं, करते दूर प्रदूषण'। वृक्षों को देव माना गया है, नैषधीयचरितम् में पंचदेव वृक्षों का उल्लेख किया गया है -

'उपहरन्ति न कस्य सुपर्वणः सुमनसः कति पञ्च सुरद्रुमाः।

तव तु हीनतया पृथगेकिकां धिगियतापि न तेऽङ्गविदारणम्।।[43]

40. किरातार्जुनीयम्, 5/9
41. बुद्धचरितम्, 1/22
42. भट्टिकाव्य, 2/6
43. नैषधीयचरितम्, 4/90

अर्थात् पाँच देव वृक्ष किस देवता को उपहार नहीं देते हैं यानि सबको देते हैं किन्तु हीनता होने के कारण वे तुमको पृथक-पृथक केवल एक-एक ही पुष्प उपहार में देते हैं। इतने से भी तुम्हारा अंग विदीर्ण नहीं हो जाता। कहने का भाव यह है कि मदार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन ये देव वृक्ष हैं, ये वृक्ष पर्यावरण संरक्षित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं, इसलिए ये देवताओं के प्रिय हैं। देवदारू देवतरु के नाम से भी जाना जाता है। देवदारु वृक्ष से युक्त वायु को क्षयरोग का नाशक बताया गया है। यह हिमालय के पवित्र स्थलों पर पाया जाता है। इसे देवार्चन के उपयोग में भी लाया जाता है। हिमालय की सरसराहट के साथ जब वायु तीव्रता से बहता है तो देवदारु वृक्षों को झकझोर देता है -

'भगीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पित देवदारुः।'[44]

पारिजात की भी गणना देव वृक्षों के रूप में की जाती है। इसके फूल अत्यन्त कोमल, क्षणों में मुरझा जाने वाले और मधुर मोहक सुगन्ध लिए होते हैं। इसके पत्रों का रस ज्वर औषधि के रूप में व्यवहृत होता है। पारिजात पुष्पों की कोमलता का प्रमाण उर्वशी की मनोदशा से ज्ञापित होता है।[45] रघुवंश महाकाव्य में आया है कि मन्दार वृक्ष के पुष्पों को शची अपने केशों में धारण करती थी -

'शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान्मन्दारशून्यानलकाँश्चकार।'[46]

कहने का अभिप्राय है कि मन्दार इतना महत्त्वपूर्ण है कि देव पत्नियां इसे सिर पर धारण करती हैं। यह स्वास्थ्य का प्रतीक है। इससे अनेक औषधि तैयार की जाती है। शमी वृक्ष का भी पर्यावरण की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। इसे लोकभाषा में छोंकर कहा जाता है, याज्ञिक अग्नि प्रज्ज्वलन का काम जिन दो अरणियों से करते हैं उनमें निचली अरणि शमी की ही होती है। वैदिक काल से ही यह वृक्ष पूज्य माना गया है। इसके भीतर अग्नि रहती है। इस बात को कालिदास ने बार-बार दोहराया है। गर्भवती सुदक्षिणा के लिए कालिदास ने शमी का उद्बोधन किया है -

---

44. कुमारसम्भवम्, 1/15
45. विक्रमांकदेवचरितम्, 2/12
46. रघुवंश, 6/23

'शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम्' ।[47]

इस प्रकार शमी वृक्ष का यज्ञ सम्पादन में विशेष योगदान है। शमी से यज्ञीय अग्नि का आविर्भाव होता है। संस्कृत वाङ्मय में हिमालय का भी विशेष महत्त्व है। हिमालय को देवता का वास स्थल माना जाता है। यहाँ पर्यावरण विशेष रूप से संरक्षित है, यहाँ वृक्ष-वनस्पतियों से पर्यावरण पुष्ट है। यहाँ ऋतु अपने समय में आती है। आज पर्यावरण असंतुलन के कारण जाड़ा, गर्मी और बरसात का जो नीयत समय है वह बदल गया है। वर्षा बिलम्ब से प्रारम्भ हो रही है, जाड़ा विलम्ब से पड़ रही है लेकिन गर्मी जल्दी प्रारम्भ हो जा रही है। पर्यावरण के असंतुलन से ऋतुओं का असामयिक परिवर्तन हो रहा है। गर्मी भी औसत से अधिक पड़ रही, जाड़ा भी कड़ाके की पड़ रही हैं और वर्षा की यह स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि कहीं लोग बाढ़ का सामना कर रहे हैं तो कहीं सूखे का दंश झेल रहे हैं। सब कुछ सब जगह विकृत सा हो गया है। लेकिन हिमालय पर आज भी वही स्थिति वर्तमान है क्यों कि वहाँ पर्यावरण संतुलित है। हिमालय के देवत्त्व का दर्शन कालिदास ने किया है -

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।

पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः'।।[48]

उत्तर दिशा में देवताओं की आत्मा वाला हिमालय नामक पर्वतराज हैं। जो पूर्वी और पश्चिमी समुद्र में प्रवेश करके पृथिवी के मानदण्ड के समान स्थित है। आज भी लोग गर्मी के समय में हिमालय की पवित्रता और पावनता का दर्शन कर अपने को शीतल करते हैं। हिमालय को रत्नों की खान कहा जाता है -

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।

भास्वान्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धारित्रीम्'।।[49]

सभी पर्वतों ने जिसको वत्स के रूप में परिकल्पना करके दोहन क्रिया में दक्ष सुमेरु पर्वत दोग्धा के रूप में स्थित होने पर पृथु के द्वारा प्रदर्शित पृथ्वी से चमकीले रत्न और औषधियों का दोहन किया है, हिमालय उन दिव्यौषधियों का

47. रघुवंश, 3/9
48. कुमारसम्भवम्, 1/1
49. वही, 1/2

प्राप्ति स्थल है। यहाँ अनेक दिव्य औषधि सहजता से प्राप्त हो जाती है। हिमालय के दिव्य वायु पर मुग्ध कालिदास ने कहा है -

'भागीरथीनिर्झरसीकरणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।

यद्धायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः'।।[50]

गङ्गा के झरनों के जल की बूंदों की वाहिका, देवदारु वृक्षों को पुनः कंपाने वाली तथा मयूर पंखों को अलग करने वाली हिमालय की वायु शिकारी शबरों के द्वारा सेवित की जाती है। यहाँ जल और वायु दोनों पवित्र स्थल के सम्मिलन से पर्यावरण के दिव्य केन्द्रीय स्वरूप का दर्शन होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत महाकाव्यों में पर्यावरण के तत्त्वों में दैवी भाव विद्यमान है। कवि ने प्रत्येक प्राकृतिक तत्त्वों का श्रद्धा से स्तवन किया है। शिव के अष्टमूर्तियों में पर्यावरण के सभी घटक प्राप्त होते हैं जिनका कवि ने हार्दिक अभिनन्दन किया है। प्रकृति पूजा ही पर्यावरण संरक्षण की केन्द्रीयभूत भावना है, इसके बिना पर्यावरण को संरक्षित नहीं किया जा सकता है। कवियों ने वृक्ष, वनस्पति, नदी और सरोवर आदि सबका दैवी रूप में उल्लेख कर मानव को यही सन्देश दिया है कि पर्यावरण के सभी घटक केवल पृथ्वी के सौन्दर्य ही नहीं बल्कि हमारे जीवन के नियामक भी हैं। इसके प्रति श्रद्धा, आस्था और पूजा का भाव रखना ही इनकी सच्ची सेवा है और संरक्षित रखने का उपाय भी।

द्वितीय खण्ड - गीतिकाव्य

संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य का अतिविशिष्ट स्थान है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें काव्यत्त्व के साथ सङ्गीतात्मकता की प्रमुखता होती है। नाद सौन्दर्य के साथ-साथ काव्य सौन्दर्य बड़ा ही आह्लादक होता है। इनके पद्यों को वाद्यों के साथ गायन किया जा सकता है। शास्त्रीय दृष्टि से गीतिकाव्य को खण्ड काव्य कहा जाता है -

'खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारी च'।[51]

---

50. कुमारसम्भवम्, 1/15

51. साहित्यदर्पण, 6/239

गीतिकाव्य प्रायः भाव प्रधान ही रहता है। भावातिरेक ही गीति काव्य का मूल प्रेरणा स्रोत है। कवि अपनी रागात्मक अनुभूति तथा कल्पना से वर्ण्य विषय तथा वस्तु को भावात्मक बना देता है। गीतिकाव्य का निर्माण उस बिन्दु पर होता है, जब कवि का हृदय सुख-दुःख के तीव्र अनुभव से आप्लावित हो जाता है और वह अपनी रागात्मिका अनुभूति को अपनी हार्दिक भावना की पूर्णता के कारण वाह्य अभिव्यक्ति के रूप में परिणत कर देता है। हृदय का अनुराग एक पक्षी हुआ करता है, इसीलिए इसका विस्तार बहुत अधिक नहीं हो पाता है। यह अन्तरात्मा के ध्वनि विशेष का पुञ्ज होता है। महाकाव्य में यदि जीवन की समग्रता है तो गीतिकाव्य में एक पक्षता। महाकाव्य में विस्तार है तो गीतिकाव्य में गाम्भीर्य। महाकाव्य में शिथिलता है तो गीतिकाव्य में हृदय की आवाज और तन्मयता। अतएव गीतिकाव्य अल्पदेशीय होने के कारण अधिक लोकप्रिय माना जाता है।

गीतिकाव्यों में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति की हृदयाकाश में गहन अनुभूति ही गीति काव्य का सर्जक होती है। प्रकृति के समग्र रूप को पर्यावरण कहा जाता है। समग्रता का तात्पर्य पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, वृक्ष-वनस्पतियों और पशु-पक्षियों से है। यही पर्यावरण के व्यष्टि रूप हैं, इनके समष्टि का नाम पर्यावरण है। पर्यावरण हमारी संस्कृति का अविभाज्य अङ्ग है। हमारी परम्परा में पर्यावरण पूजनीय है क्योंकि इसी के आश्रय में हमारा जीवन संचरित होता है। बिना पर्यावरण के हम एक क्षण नहीं रह सकते हैं। सोना, बैठना, खाना-पीना सबका आश्रय पर्यावरण ही है। गीतिकाव्य परम्परा में मेघदूत का प्रमुख स्थान है। यक्ष काले कजरारे बादल को देखकर उसके दैवी स्वरूप का बोध करता है और तत् क्षण प्रेयसी को अपना समाचार ले जाने के लिए प्रणत निवेदन करने लगता है। भावातिरेक के कारण यक्ष एकदम भूल चुका है कि बादल निर्जीव है। वह उससे सजीव जानकर व्यवहार करता है। उसके व्यवहार को देखकर कवि लिखता है -

'धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गृह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु'।।[52]

52. मेघदूत, पूर्वमेघ/5

अर्थात् धुंआ, तेज, जल और वायु का समूह मेघ कहाँ और कुशल इन्द्रिय वाले प्राणियों के द्वारा भेजे जाने योग्य सन्देश कहाँ? इस बात का उत्कण्ठा के कारण विचार न करते हुए यक्ष उस मेघ से याचना करता है क्योंकि कामार्त को सजीव और निर्जीव के विषय का विवेक नष्ट हो जाता है। यक्ष उस समय अत्यन्त भावविह्वल था। उसे प्राकृतिक शक्तियों पर अपार विश्वास था। वह उस समय असहाय हो चुका था। फलस्वरूप प्रकृति से निवेदन करने लगा। मेघ से वार्तालाप करने लगा। पागलपन जैसा लगता है लेकिन मेरी दृष्टि में प्रेमी यक्ष बादलों में शिव-शक्ति का दर्शन कर रहा है; जिससे सभी जीव पोषित होते हैं। वह तो बादल को सचेतन सुविज्ञ पुरुष मानकर उसके कुल-खानदान का भी परिचय देता है -

'जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।[53]

अर्थात् हे मेघ मैं तुम्हें विश्व विख्यात पुष्कर और आवर्तक के कुल में उत्पन्न अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाला इन्द्र का प्रधान पुरुष जानता हूँ। यही कारण है कि भाग्यवश गुणशाली व्यक्ति से याचना निष्फल होने पर भी कुछ ठीक है। परन्तु गुणहीन व्यक्ति से की गयी याचना सफल होने पर भी अच्छी नहीं है। इस श्लोक को पढ़ने पर ऐसा नहीं लगता है कि यक्ष विवेक शून्य है। वह मेघ के उदार दैवी भाव को देखकर भाव विभोर हो गया है, यही कारण है कि उसके विख्यात वंश के पूर्व पुरुषों का बखान करता है। विवेकशून्य व्यक्ति तो अपने वंश को भी भूल जाता है। फिर दूसरे के वंश का नाम जानना उसके लिए कहाँ सम्भव है? बादल विविध रूप धारण कर लेता है। बादल को वह अतिश्रेष्ठ समझ कर ही याचना करता है। भारतीय संस्कृति देवमूलक संस्कृति है। ईट-पत्थर को भी इसमें देव स्वरूप ही माना जाता है तो वह बादल को ही देव मान ले तो इसमें आपत्ति किस बात की? वह बादल को निर्जीव नहीं सजीव मानकर पूज्य भाव से याचना करता है। वह तत्काल तोड़े गये गिरिमल्लिका के पुष्पों से पहले पूजा करके उस मेघ के प्रति प्रसन्न होकर प्रणयभरे वचनों से कहा -

---

53. मेघदूत, पूर्वमेघ/6

'प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार'।।[54]

अर्थात् किसी प्रकार आषाढ़ के अनन्तर श्रावण के सन्निकट आने पर अपनी भार्या के जीवन की अभिलाषा करने वाले उस यक्ष ने अपने कुशल समाचार को मेघ द्वारा अपनी प्राणवल्लभा के समीप भेजना चाहा। अतः उसने पर्वतों पर उत्पन्न हुई नवीन चमेलियों से मेघ का पूजन किया। प्रीतिपूर्वक वचनों से स्वागत करके मेघ से कुशल प्रश्न किया। यक्ष मेघ के प्रति श्रद्धावनत है। उसके पूजनार्थ पुष्पों का उपयोग करता है। हर प्रकार से मेघ को प्रसन्न करने की चेष्टा करता है। पर्यावरण का ऋतुओं से अति धनिष्ट सम्बन्ध है। जहाँ पर्यावरण शुद्ध रहता है वहाँ ऋतुएँ समय से आती और जाती हैं। अलकापुरी के पर्यावरण के भव्य स्वरूप का परिचय कालिदास के शब्दों में -

'हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्'।।[55]

हे मेघ अलकापुरी में षड् ऋतुएं सदा विराजमान रहती हैं। अतः सदा हर ऋतु के फूल फूला करते हैं। यथा - जिस अलका नगरी में नववधूएँ हाथों में नीला कमल धारण करती हैं। शरद् में कमल होता है। (केश) केशजाल में बालकुन्दों को बाँधती हैं। बालकुन्द हेमन्त में होता है। अपने मुखों को लोध्रपुष्प के परागों से विमल करती हैं, पाउडर लगाती हैं। लोध्रपुष्प शिशिर ऋतु में होता है। अपने चूडापाश (जूड़ों) में नवकुरवक का पुष्प बाँधती हैं। नवकुरवक वसन्त ऋतु में होता है। कानों में शिरीष कुसुम धारण करती हैं। शिरीष-कुसुम ग्रीष्म काल में होता है। अपनी सीमान्तों में कदम्ब को लगाती हैं, जो वर्षा में उत्पन्न होता है। कवि ने

54. मेघदूत, पूर्वमेघ/4
55. वही, उत्तरमेघ/2

पर्यावरण विषयक तत्त्वों का उल्लेख करके उसके मनोहारी स्वरूप का निरूपण करता है। कविरत्न श्रीकृष्ण सेमवाल द्वारा रचित 'हिमाद्रि पुत्रभिनन्दन् काव्यम्' में गङ्गा के महत्त्व को बतलाया गया है -

'हिमाद्रिकुक्षेर्गढप्रदेशात् यथा स्रुतो जह्नुसुताप्रवाहः।'[56]

अर्थात् हिमालय की गोद में बसे गढ़वाल से निकली हुई गङ्गा का प्रवाह सम्पूर्ण संसार को निरन्तर उपकृत करता है। कवि यहाँ गङ्गा के महिमा का वर्णन किया है। गङ्गा भारत के अधिकांश क्षेत्रों को सिञ्चित करने वाली प्रमुख नदी है। इसीलिए गङ्गा को भारत का प्राण कहा गया है। डॉ. गोपीनाथ टण्डन द्वारा रचित गजेन्द्रमोक्ष खण्डकाव्य के चतुर्थ सर्ग में त्रिकूट पर्वत की घाटी पर समस्त ऋतुओं के विलास से कमनीय तथा अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से आवेष्ठित ऋतुमत नामक वरुण देवता का एक उपवन था। वरुण देवता का उपवन इस बात का प्रमाण है कि वृक्ष-वनस्पति जड़ नहीं अपितु चैतन्यभाव से पूरित देव हैं। वरुण के इस विशाल उपवन के एक भाग में निर्मल जल से परिपूर्ण कमलों से परिलक्षित अच्छोद संज्ञक एक रमणीय जलाशय था। जलाधिपति वरुण के प्रभाव से अपने स्वाभाविक वैर का परित्याग कर मृगाधिपति अन्य पशुओं के साथ उस सरोवर में जल ग्रहण करता है।[57] यह खण्डकाव्य बीसवीं शताब्दी के अन्तिम समय का है। संस्कृत परम्परा के कारण इसमें भी जल के अधिपति वरुण को स्वीकार किया गया है। श्रीसूर्यशार्दूलविक्रीडितकाव्यम् में तेज के अधिष्ठाता सूर्य की मङ्गल प्रार्थना की गयी है -

'गणेशं नमस्कृत्य देवीं चैव सरस्वतीम्।

गङ्गेश सूर्यदेवस्य वन्दनं संविदधाम्यहम्।।[58]

अर्थात् श्री गणेश जी और सरस्वती जी को नमस्कार कर मैं (गङ्गेश) सूर्य देवता को नमस्कार करता हूँ। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश का संयोग ही पर्यावरण है। कर्णानन्द खण्डकाव्य के रचयिता श्रीकृष्ण गोस्वामी यमुना नदी की प्रार्थना करते हुए लिखा है -

---

56. श्रीकृष्ण सेमवाल, हिमाद्रिपुत्रभिनन्दन काव्यम्, श्लोक/4
57. डॉ० गोपीनाथ टण्डन, गजेन्द्रमोक्षखण्ड काव्य, चतुर्थसर्ग
58. श्रीसूर्यशार्दूलविक्रीडितं काव्यम्, मङ्गलाचरण

'सदातनारविन्दिनी सदैव कृष्ण वल्लभा।
सदासमाधिका जनं सदा पुनातु भानुजा।।[59]

सदैव नन्दनन्दन की प्यारी (यमुना) नित्य रूप से प्रवाहित रहने वाली कमलों से अपना शृङ्गार किये हुए सर्वदा सर्वोत्तम रूप से हम सबको पवित्र करें। इस प्रकार हम देखते हैं कि खण्डकाव्य भी पर्यावरण के दैवी स्वरूप से ओत-प्रोत हैं। प्रकृति के कण-कण में देवत्त्व का सन्देश खण्डकाव्य भी देते हैं। प्रकृति का एक-एक अङ्ग हमारे लिए पूजनीय हैं। प्रकृति के प्रति पूर्ण आस्था और विश्वास का भाव रखकर ही उसके कल्याणकारी स्वरूप को सुरक्षित रखा जा सकता है।

तृतीय खण्ड - मुक्तक काव्य

मुक्तक संस्कृत काव्य परम्परा की महत्त्वपूर्ण विधा है। इसके प्रत्येक पद्य स्वतंत्र होते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि इसके पद्य पूर्व या पश्चात् के पद्यों से सम्बन्ध न रखते हुए अकेले अपने आशय की अभिव्यक्ति करने में समर्थ होते हैं। मुक्तक के सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथ लिखते हैं -

'छन्दोवद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम्'।[60]

अर्थात् पद्यात्मक काव्य वह है जिसके पद छन्दोबद्ध हुआ करते हैं। यह पद्यात्मक काव्य भी कई प्रकार का हुआ करता है। इस काव्य विधा के पद्य अन्य किसी पद्य की आकांक्षा से मुक्त अथवा स्वतंत्र हुआ करते हैं। संस्कृत साहित्य के जितने मुक्तक काव्य उपलब्ध हैं उनसे कहीं अधिक खो गये हैं और कदाचित सदा के लिए खो गये हैं। मुक्तक की रचना संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओं में होती रही है। मुक्तक काव्य के सम्बन्ध में आचार्य आनन्दवर्धन की यह उक्ति सदा स्मरणीय है -

'मुक्तकेषु प्रबन्धेष्विव रसबन्धभिनिवेशिनः काव्यों दुश्यन्ते।
यथा ह्यमरूकस्य कवेर्मुक्तकाः श्रृङ्गाररसस्यन्दिनः प्रबन्धायमाना प्रसिद्धा एव'।[61]

---

59. श्रीकृष्ण गोस्वामी, कर्णानन्द, 83
60. साहित्य दर्पण, 6/314
61. ध्वन्यालोक, उद्योत 3

अर्थात् रसास्वादन की दृष्टि से मुक्तक रचनायें प्रबन्ध काव्य की भाँति महत्त्वपूर्ण है। अमरूक के मुक्तकों में बहने वाली श्रृङ्गार मन्दाकिनी की रसधारा का जिसने आनन्द लिया हो, उसे प्रबन्धकाव्यों के क्षीर सागर से क्या प्रयोजन। इन मुक्तकों में पर्यावरण सम्बन्धित ऐसे श्लोक भी प्राप्त होते हैं जो सचमुच पर्यावरण के निकष तुल्य दृष्टिगोचर होते हैं। भर्तृहरि ने वैराग्यशतक में तपोवन का उल्लेख करते हुए लिखा है -

'धन्याना-गिरिकन्दरेषु वसतां ज्योतिः परं ध्यायता
मानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निश्शङ्कमङ्केशयाः।
अस्माकं तु मनोरथोपरचित प्रासाद वापीतट
क्रीडाकानन केलि कौतुक जुषामायुः परं क्षीयते'।।[62]

अर्थात् वे लोग सचमुच धन्य हैं जो पर्वत की कन्दराओं में निवास करते हुए परमज्योति का ध्यान करते हैं और जिनकी गोद में बैठे हुए पक्षी नेत्रों में बहने वाले आनन्द के आंसुओं के कणों को पीया करते हैं परन्तु मनोरथ से बनाये गये महल, बावली और उपवन में विहार करने से हमारी आयु दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। सांसारिक पुरुष रात-दिन गृहस्थी की चिन्ता में डूबा रहता है। कवि ने गृहस्थ और तापस के जीवन की तुलना किया है। तपस्वी शुद्ध पर्यावरण में त्यागपूर्वक आत्मचिन्तन करता हुआ अलौकिक आनन्द की अनुभूति करता है। गृहस्थ मोहग्रस्त होकर सांसारिक विषयों में फंसा हुआ दुःख भोगता है। जो आनन्द प्रकृति की सानिध्य में है वह आनन्द कभी भी महलों में नहीं प्राप्त हो सकता है। प्रकृति ही जीव की श्रेष्ठ संरक्षिका है, जो सदैव मनुष्य का पालन-पोषण करती है। अपने को उससे युक्त करके मुनि लोग जीवन यापन करते हैं। अतः सुखी और आनन्दित रहते हैं। भर्तृहरि की दृष्टि में तापस जीवन नितान्त श्रेयस्कर है। तपस्वी के लिए पृथ्वी ही रमणीय शय्या है, भुजाएं ही तकिया हैं, वृक्ष-वनस्पतियाँ ही देव हैं, आकाश ही चादर है, अनुकूल वायु ही पंखा है। पशु-पक्षियाँ ही मनोविनोद के साधन हैं, अतः तपस्वी जीवन सब प्रकार से मङ्गलदायक है। कवि तपस्वी जीवन मुक्तकण्ड से प्रशंसा करता है -

---

62. वैराग्यशतक, 14

'गङ्गातीरे हिमगिरि शिलावद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निवशङ्का
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः स्वाङ्गमङ्गे मदीये'।।[63]

श्री गङ्गा जी के तट पर हिमालय पर्वत की चट्टान पर पद्मासन जमाने या लगाने वाले ब्रह्मोपासना के अभ्यास की क्रिया द्वारा योगनिद्रा अर्थात् निर्विकल्पक समाधि में पहुँचने वाले अर्थात् योगी जैसे मेरे लिए उन दिनों से बढ़कर और क्या सुदिन होंगे, जिनमें बूढ़े हरिण निर्भय होते हुए मेरे अङ्ग पर अपने अङ्ग को खुजलाएंगे अर्थात् वे ही दिन मेरे लिए अहोभाग्य के हैं। पशु-पक्षी हमारे पर्यावरण के अभिन्न अङ्ग हैं। वृक्ष-वनस्पतियाँ एवं नदियाँ तो साक्षात् परम् पवित्र पर्यावरण स्वरूप हैं। ये सभी हमारे श्रद्धेय हैं, इनकी सुरक्षा ही इनकी पूजा है। इनके सकुशल रहने पर ही हम भी सकुशल रह सकेंगे। यही भावना पर्यावरण संरक्षण का मूलमन्त्र है। डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने अपने मुक्तक काव्य 'देशोऽय कुरूते प्रोन्नतिम्' में नदियों की स्थिति पर व्यंग करते हुए लिखा है -

'गङ्गाद्याः पुण्यापाः
प्रदूषयन् नित्यमनेकविधाभिः।
अमृतं विषं विरचयन्।
देशोऽयं कुरूते प्रोन्नतिम्'।।[64]

अर्थात् गङ्गा आदि पावन नदियों को प्रतिदिन अनेकों प्रकार से प्रदूषित करता हुआ तथा अमृत को जहर बनाता हुआ यह देश अच्छी तरक्की कर रहा है। गङ्गा आदि पवित्र पावन नदियाँ हमारी आस्था की केन्द्र स्थली हैं। इनका जल अमृत समान है, परन्तु आज हमारा देश औद्योगीकरण के नशा में इस पवित्र नदी को प्रदूषित कर के अपना विमल विकास कर रहा है। लेकिन यह सम्भव नहीं हैं, नदी पूर्णसत्ता की बोधक है। पूर्ण की उपेक्षा करके अपूर्ण संसार का विकास सम्भव नहीं है। वृक्ष की अन्धाधुन्ध कटाई पर डॉ. हरिनारायण दीक्षित लिखते हैं कि -

63. वैराग्यशतक, 98

64. हरि नारायण दीक्षित, देशोऽयं कुरूते प्रन्नतिम्, 4

'उपकारीणि वनानि
भूषण भूतानि च वसुधा देव्याः।
कन्तन् कृतान्त सदृशः
देशोऽयं कुरूते प्रोन्नतिम्'।।[65]

अर्थात् भलाई करने वाले और धरती की शोभा बढ़ाने वाले जङ्गलों को यमराज की भाँति काटता हुआ यह देश अच्छी तरक्की कर रहा है। वृक्ष-वनस्पतियाँ मनुष्य की सदैव भलाई करते हैं। उन्हें प्राण वायु की व्यवस्था करते हैं। वृक्ष इत्यादि पृथ्वी के आभूषण हैं, परन्तु आज इन्हें काटा जा रहा है। नदियों को अवरोधित किया जा रहा है। गङ्गा हमारी आस्था की प्रतीक है इसमें अवरोध पैदा कर इसको प्रदूषित करना बहुत बड़ा अपराध है। जन-जन की आस्था गङ्गा से जुड़ी है। गङ्गा में कृत्रिम उपायों से पैदा किया गया गतिरोध आस्था को प्रभावित करेगा और जब आस्था प्रभावित होगी तब मानव का अस्तित्व नहीं बच पायेगा क्योंकि आस्था संजीवनी है।

वृक्ष-वनस्पतियाँ, पशु-पक्षियाँ, वायु-जल इत्यादि सभी हमारे लिए परम आदरणीय हैं, सम्माननीय हैं। इनके प्रति आदर और सम्मान की भावना इन्हें संरक्षण प्रदान करने के लिए प्रेरित करती है। हम उस संस्कृति में पले-बढ़े हैं जिसमें सृष्टि के प्रत्येक तत्त्व को ईश्वर का स्वरूप समझा जाता है। नदी, पहाड़, पर्वत, वृक्ष इत्यादि सब में हमारी संस्कृति देवत्त्व का सन्देश देती है। इसी भावना से संस्कृत मुक्तककाव्य परम्परा के साथ-साथ महाकाव्य एवं खण्ड काव्य में भी पर्यावरण के दैवी स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है। वस्तुतः पर्यावरण वह तत्त्व है जिसके क्षत्र छाया में ही प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सुरक्षित है। इसी महनीयता के कारण पद्य काव्यों के अनेक स्थल पर पर्यावरण का गुणगान किया गया है। गुणगान उसी का किया जाता है जिसके गुणों से लोक का कल्याण होता है। गुणी के गुण से स्वतः लोग लाभान्वित हो उसके गुणों के प्रशंसक हो जाते हैं, भक्त हो जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पद्य काव्य के तीनो खण्डों - महाकाव्य, खण्डकाव्य, और मुक्तक काव्य का पर्यावरण की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। इनमें

---

65. वैराग्यशतक, 6

पग-पग पर पर्यावरण के माङ्गलिक पक्षों का वर्णन किया गया है। इनसे हमें सतत् पर्यावरण के प्रति सचेत रहने की प्रेरणा मिलती रहती है। हम पर्यावरण का संरक्षण करेंगे, संरक्षित पर्यावरण हमारा संरक्षण करेगा। इसलिए हमें इनकी सुरक्षा एवं संरक्षण के प्रति सजग रहना ही चाहिये। इनके गुणों से ही हम इन्हें ईश्वर के तुल्य समझते हैं। ईश्वर की भाँति ये भी मेरे संरक्षक हैं। कवियों की वाणी हमें पर्यावरण में ईश्वरीय भाव से भावित होकर जीवन-यापन करने हेतु मार्गदर्शन करती है।

अध्याय - 5

चम्पू-काव्यों में पर्यावरण का दैव स्वरूप

संस्कृत काव्यों में चम्पू-काव्य का अति विशिष्ट स्थान है। प्रकृति की पूजा संस्कृत काव्यों की महनीय परम्परा रही है। वृक्ष-वनस्पतियाँ, पशु-पक्षियाँ, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश सभी प्रकृति के अङ्ग हैं। प्रकृति और पर्यावरण दोनों एक ही हैं। इनमें किसी प्रकार का विभेद नहीं दिखलाई पड़ता है। हमारी संस्कृति में इन सबके प्रति दैवी भाव रखा जाता है, सबमें लोकमंगल की प्रकृष्ट भावना विद्यमान है। पद्य काव्यों एवं गद्य काव्यों के समान ही चम्पू-काव्य भी इनके प्रति दैवी भावना से युक्त होकर गुणगान करता है। चम्पू-काव्य काव्य की वह विद्या है जिसमें गद्य एवं पद्य दोनों का समभाव से सृजन किया गया होता है। इस काव्य विधा ने साहित्यिक सौन्दर्य, मधुर विन्यास तथा रसपेशलता की दृष्टि से अन्य साहित्य से किसी मात्रा में न्यून नहीं है। चम्पू-काव्य का दण्डी ने सर्वप्रथम लक्षण निर्दिष्ट करते हुए काव्यादर्श में लिखा है -

'गद्यपद्यमयी काचित् चम्पूरित्यभिधियते'।[1]

यहाँ एक तथ्य ध्यान देने योग्य है कि रूपकों में भी गद्य एवं पद्य दोनों विद्यमान रहता है, लेकिन रूपकों में केवल पद्य ही सरस होते हैं तथा कहीं-कहीं कुछ गद्यात्मक सूक्तियाँ भी सरस हुआ करती हैं। परन्तु चम्पूकाव्य में गद्य एवं पद्य दोनों सर्वत्र सरसता लिये होते हैं। गद्य काव्य अर्थ के गौरव तथा वर्णन की दृष्टि से महत्त्व रखता है तो पद्य काव्य अपनी छन्दोबद्धता से उदीयमान गेयता और लयवद्धता से समृद्ध होता है। इन दोनों का मिश्रण एक नूतन चमत्कार का अद्‌भुत कमनीय सृजन प्रस्तुत करता है। इसीलिए चम्पू-काव्य की नवीन शैली से सहृदय आकृष्ट हुए तथा अन्यान्य नूतन रचनाओं से इसे समृद्ध बना दिये।

हमारी परम्परा में सम्पूर्ण सृष्टि देवमय है। पंचतत्त्वों से निर्मित सम्पूर्ण

---

1. काव्यादर्श, 1/30

सृष्टि दैवमयी है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश को शिव स्वरूप माना गया है। मदालसाचम्पू में त्रिविक्रम भट्ट ने स्पष्ट लिखा है कि -

'शान्त्यर्थमन्तरायाणां शिवां पञ्चमयीं नमः।'[2]

अर्थात् ग्रन्थ के मध्य में आने वाले विघ्नों की शान्ति के लिए पञ्चमयीं शिव को नमन करते हैं। कालिदास, भारवि इत्यादि कवियों ने शिव के आठ स्वरूप का उल्लेख किया है। परन्तु त्रिविक्रमभट्ट ने पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश को ही पञ्चमयी शिव कहा है। इन्ही पञ्च तत्त्वों के समष्टि को पर्यावरण कहा जाता है। अतः ये पांचों तत्त्व शिव स्वरूप हैं। इनके प्रति आस्था और भक्ति का अभिप्राय साक्षात् शिव के प्रति आस्था और भक्ति रखना है। इनकी पूजा करने पर शिव की स्वतः पूजा हो जाती है। इन पञ्च तत्त्वों के प्रति सदैव दैवी भाव रखना हम सबका पुनीत कर्त्तव्य है। इसी प्रकार वृक्ष-वनस्पतियाँ पशु-पक्षी भी हमारे पर्यावरण के महनीय घटक हैं। इनके प्रति भी हमें दैवी व्यवहार रखना चाहिए। इन्हें देखते ही मन हर्षित हो जाता है और हम आनन्द विभोर हो जाते हैं। शायद देव दर्शन का ही यह फल है, नहीं तो हम जिससे बात नहीं कर सकते और न ही वह ही मुझसे बात कर सकते हैं फिर भी उसे देखते ही प्रफुल्लित हो जाते हैं। हम उसके सौन्दर्य का दास बन जाते हैं, यह सब बिना प्रयास होने लगता है। मेरी दृष्टि में वृक्ष-वनस्पतियाँ इत्यादि के दैवी गुणों के कारण हम स्वतः झुक जाते हैं। किसी महापुरुष का दर्शन करते ही स्वभाववश हमारे अन्दर उनके प्रति सम्मान का भाव जागता है और तत्क्षण हमारा मस्तक झुक जाता है। कहीं कोई प्रयास नहीं हुआ लेकिन हम किसी के चरण में पड़ जाते हैं। यही स्थिति वृक्ष-वनस्पतियों, पशु-पक्षियों के साथ भी होती है। अतः इनके दैवी गुणों के कारण ही अन्तश्चमत्कार होता है। त्रिविक्रम भट्ट ने मदालसा चम्पू में पर्यावरणीय सौन्दर्य का दर्शन करते हुए लिखा है -

'दूरादेव तमालजालमबले दृष्टवा नभश्चुम्बितं
मेघानामुदयोऽजनीति मुदितैरुद्वीर्णकेकारवैः'।
आरब्धे नटने शिखण्डिनिकरैर्वर्षागमाशङ्कया
गाहन्ते तृणकल्पितां कमलिनीकेदारपाल्याः कुटीम्'।।[3]

---

2. मदालसाचम्पू, 1/मङ्गलाचरण
3. वही, 2/28

अर्थात् गगन चुम्बी तमाल वृक्षों समूहों को देखकर दूर से ही मयूरों के हर्षित कलरव को सुनकर कमल युक्त दलदल जमीन पर या कमल वन में रहने वाले पक्षीगण ने यह जाना कि मेघों का उदय हो गया। मयूरों के नृत्य के आरम्भ हो जाने पर वर्षा के आगमन की आशंका से घास के बने अपने कुटीर में पक्षी समूह जा रहे हैं। तमालवृक्ष, मयूर, बादल, पक्षीगण सभी पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। यहाँ कवि सभी का एक साथ वर्णन कर अपनी पर्यावरण के प्रति गहरी आस्था प्रकट किया है। मेघ हमारे जीवन कक अभिन्न तत्त्व हैं। इसी से जल बरसता है। जल से अन्न और अन्न से जीवन पलता है। प्राचीन समय में तालाब निर्माण की परम्परा मिलती है, जिसमें वर्षा का जल एकत्रित होता रहता था। एकत्रित जल का उपयोग स्नान करने के उपयोग में लाया जाता था। कुछ स्थलों पर जलक्रीड़ा का भी उल्लेख प्राप्त होता है। जल से रंजन करना ही जलक्रीड़ा है। प्रेमी अपने प्रिय के ऊपर जल से प्रहार कर आनन्दित होता है। जलक्रीड़ा के स्वरूप का उद्घाटन करते हुए कहा गया है -

'शृङ्गाम्बुताडितमुखी सुमुखी सखीभि-
र्वक्त्रं विवर्तितमतो विदधे तदानीम्।
तत्रापि मघ्यमिति षट्चरणा निपेतु-
स्तेनातिभीतहृदया सलिले ममज्ज'।[4]

अर्थात् सखियों के द्वारा जल उछालकर मुख पर मारने से सुमुखी मदालसा ने अपना मुख घुमा लिया। परञ्च वहाँ भी यह कमल है, ऐसा समझकर भौरे पहुंच गये। उन भौरे से डरी हृदय वाली पानी में अपना शरीर डुबा लिया। वस्तुतः जलक्रीड़ा में एक मित्र दूसरे मित्र पर पानी से प्रहार करके मनोरंजन करता है, हृदय का रंजन करता है। अतः इस महनीय हृदयरंजक पदार्थ की सुरक्षा हमें करना ही चाहिए। त्रिविक्रमभट्ट ने एक स्थल पर भीलों की पर्यावरण बोध की समानता मुनियों से करते हुए लिखा है -

'वसनं तुहिनं शिलैवशय्याभिषवः सौरसरस्वतीपयोभिः।
अशनं फलमूलमत्र मेध्यं तरुमूलं वसतिर्वनेचराणाम्'।।[5]

---

4. मदालसाचम्पू, 2/41
5. वही, 5/100

अर्थात् इन वनेचरों का हिम ही कपड़ा है। पत्थर की शिला ही शय्या है। आकाशगामिनी सरस्वती के जल से ही यज्ञान्त स्नान कार्य होता है। फल-मूल इनके भोज्य पदार्थ हैं। वृक्ष के नीचे ही कुटुम्ब निवास है। यही इनका यज्ञ है। वृक्ष की छाया ही सबका आश्रय है। आकाश देवी सरस्वती का प्रतीक है। आकाश मण्डल के धवल स्वरूप को देखकर इसे आकाशगङ्गा भी कहा जाता है। कवि सम्पूर्ण प्रकृति को यज्ञीयभाव से देखता है। यज्ञ सर्वविध लोकोपकारी है। सम्पूर्ण पर्वत क्षेत्र वनेचरों का महान् उपकारी है। जो देता है वही देव कहा जाता है, इस अर्थ में सम्पूर्ण तपोवन देव स्वरूप है, इसमें वनदेवता का वास है। तपोवन को इसी रूप में भारतीय संस्कृति देव तुल्य मानती है। हरी-भरी वनस्पतियों, पशु-पक्षियों से सुसज्जित वातावरण में यम-नियम का पालन करता हुआ तपस्वी पर्यावरण का संरक्षण करता है। इसमें ईशभाव रखता है। यही भाव हमें यशस्तिलकचम्पू में भी प्राप्त होता है।[6] तपोवन भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। पशु-पक्षियाँ तपोवन के सौन्दर्यवाहक माने जाते हैं। इसीलिए यशस्तिलकचम्पू में पशुबलि का घोर विरोध मिलता है। पशु-पक्षियों द्वारा अनेक दूषित पदार्थों के सेवन से पर्यावरण सन्तुलित होता है। महाराज यशोधर द्वारा अनेक जैन इतर शास्त्रों के प्रमाणों से पशुबलि व मांसभक्षण का विरोध किया गया है -

'हताः कृपाणेन वनेऽपि जन्तवो बाढं म्रियन्ते गलपीडनाच्च।
अदन्ति चैतान्स्वयमेव देव्यो व्याघ्राः स्तवार्हाः परमत्र सन्तु।।
कृत्वा मिषं दैवमयं हि लोको मद्ये च मांसे च रतिं करोति।
एवं न चेद्दुर्गतिसंगतिः स्याद्दुष्कर्मणां कोऽपर एव मार्गः।।'[7]

अर्थात् पशुओं की बलि करने से देवता सन्तुष्ट होते हैं। यह कथन असत्य है। हे माता! पशु आदि प्राणी वन व नगर में तलवार से मारे हुए, विशेष रूप से मरते हैं एवं गला मरोड़ने से भी मरते है। कुलदेवता आदि इन मरे हुए पशुओं का स्वयं भक्षण करते हैं। यानि जब ये हम लोगों से दान-ग्रहण करने में कुछ अपेक्षा करते हैं। तब तो इस संसार में व्याघ्र ही स्तुति करने योग्य हैं क्योंकि व्याघ्रादि हिंसक जन्तु तो पशुओं को मारकर स्वयं भक्षण करते हैं और देवता तो हम लोगों

---

6. यशस्तिलकचम्पू, चतुर्थ आश्वास/श्लोक 25 के अनन्तर
7. वही, 4/61–62

को प्रेरित करके मरण कराकर बाद में खाते हैं, अतः देवता स्तुति योग्य नहीं हैं। यह पापी मनुष्य निश्चय ही देवता का बहाना करके मद्यपान व मांस भक्षण में अनुराग करता है। यदि इस प्रकार का देवता का बहाना न होता तो पापियों को दूसरा कौन सा दुर्गति का मार्ग है? क्योंकि यही देवता का आमिष ही पापियों के दुर्गति का मार्ग है। पशुबलि के विरोध में यशस्तिलकचम्पू के अन्य स्थल पर भी यही दृष्टिकोण दिखलाई देता है कि जीवों पर दया करना मानव का सबसे बड़ा धर्म है।[8] पशु के हिंसक प्रवृत्ति मनुष्य के लिए कदापि उचित नहीं है। पशु-पक्षी मनुष्य के जीवन को सम्वर्धित करने के लिए पर्यावरण को शुद्ध करते हैं। गन्दे पदार्थों को भोज्य बनाकर गन्दगी की सफाई करते हैं। लेकिन मनुष्य इन उपकारी पशु-पक्षियों को भी अपनी भोज्य सामग्री बनाने में संकोच नहीं करता है। चम्पू साहित्य में पशु-पक्षी के रक्षार्थ विशेष रूप से उपक्रम किया गया है। पर्यावरण संरक्षण में पशु-पक्षियों के योगदान को चम्पूकाव्यों में रेखांकित करने का उद्देश्य इनकी रक्षा करना है, पशु हत्या रोकना है। पशुवध अधर्म का प्रतीक है। अधर्मी मनुष्य नरक का गामी होता है।

पशु-पक्षी भी मानव के समान बुद्धिमान होते हैं। यहाँ हम चम्पू रामायण के उस स्थल का उल्लेख करना चाहते हैं, जहाँ जानकी जी को रावण अपने पुष्पक विमान पर बैठाकर ले जा रहा है। जानकी जी अत्यन्त कारुणिक विलाप कर रही हैं। विलाप सुनकर पक्षिराज जटायु रावण से युद्ध करता है। लेकिन रावण उसे मार देता है -

'राक्षसासिक्षतः क्षिप्रं पपात पततां वरः।

मैथलीपक्षपातेन पक्षपातमवाप्य सः'।।[9]

अर्थात् सीता का पक्षपात करने के कारण राक्षस रावण की तलवार के विदलित विहङ्गराज जटायु डैनों के छिन्न-भिन्न होने से वेग पूर्वक पृथ्वी पर गिर पड़ा। कवि यहाँ पक्षी का मानव प्रेम दर्शाया है। एक पक्षी सीता माँ की रक्षा में अपने प्राणों की बलि देता है। सीता की रक्षा वह निःस्वार्थ भाव से करता है। यहाँ सीता पर्यावरण की प्रतीक हैं और रावण प्रदूषण का प्रतीक। पक्षिराज पर्यावरण रूपी

---

8. यशस्तिलकचम्पू, 4/167–176

9. चम्पूरामायण, आरण्यकाण्ड/32

सीता को बचाने के लिए स्वयं की आहुति दे देता है। कहने का अभिप्राय यह है कि पक्षी स्वयं जहरीले पदार्थों का सेवन कर पर्यावरण की रक्षा करते हैं।

अरण्य भी हमारे आस्था के स्थल स्वीकार किये जाते हैं। अरण्य वास ईश्वर मन्दिर वास के समान माना जाता है। इसीलिए हमारे ऋषि-महर्षियों ने सदैव अरण्य को ही अपना आनन्द निकेतन बनाया। साक्षात् देवस्वरूप वन, वृक्ष, वनस्पतियाँ हमारे उपकारार्थ स्वयं विष को ग्रहण करते हैं। वे हमें जीवन देते हैं, इसी भाव से पर्यावरण को चम्पूरामायण में भी देवता कहा गया है -

'अयं कथं स्यादिति वाष्पगर्भमालोक्यमानो वनदेवताभिः।

विलोकयन् केवल पर्णशालां विनष्टचेता विललाप रामः'।।[10]

अर्थात् सीता रहित पर्णशाला को देखकर राम की क्या दशा होती है - यह जानने के लिए वन देवताओं द्वारा नेत्रों में आँसू भरकर देखे जाते हुए रामचन्द्र सीता शून्य पर्णशाला को देखते ही बेचैन होकर विलाप करने लगे। चम्पू रामायण में चित्रित वन का यह स्वरूप शायद ही विश्व के किसी साहित्य में देखने को मिलेगा। कवि का वन के प्रति विलक्षण दैवीभाव दर्शनीय है।

पशु-पक्षी पर ऋषिगण कितना स्नेह रखते हैं, यह आदिकवि के विश्वप्रसिद्ध पंक्तियों से प्रमाणित है -

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्'।।[11]

रे निषाद! तुम चिरकाल तक जीवन धारण नहीं कर पायेगा क्योंकि तुमने क्रौञ्च के जोड़े में से एक को जो कामक्रीड़ा में रत था, मार दिया है। वहाँ तमसा के तट पर क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से अन्यतर क्रौञ्च जो कामपीड़ित था। व्याध के द्वारा आहत हुआ देखकर दयार्द्र वाल्मीकि के मुखकमल से इस प्रकार की अपूर्व छन्दोमयी वाणी निकल पड़ी। ऋषि ने एक पक्षी के लिए एक मनुष्य को मरने का शाप दे दिया। ऋषि की दृष्टि में मनुष्य से पशु-पक्षियों का अधिक महत्त्व है, क्योंकि मनुष्य का जीवन पशु-पक्षियों और वृक्ष, वनस्पतियों पर ही अवलम्बित है। रामायणचम्पू में रावण के वाटिका के अद्भुत दृश्य का वर्णन देवतागण विष्णु से कर रहे हैं -

10. चम्पूरामायण, / 35

11. वही, बालकाण्ड / 6

तेन पुलस्त्यनन्दनेन सङ्क्रन्दननन्दनात्स्वमन्दिरोद्यानमानीतस्य मन्दारप्रमुखस्य वृन्दारकतरुवृन्दस्य वन्दीकृतसुरसुन्दरीनयनेन्दीवर - द्वन्द्वाच्च करारविन्दकलितकनककलशाच्च मन्दोष्णं स्यन्दमानैरम्बुभिर्जम्बालितालवालस्य पचेलि मानामपि कुसुमानां पतनभयमाशङ्कमानाः पवमानाः परिस्पन्दितुमपि प्रभवो न भवन्ति।।[12]

अर्थात् रावण ने इन्द्र के नन्दनवन से पारिजातादि कुछ देववृक्ष को लाकर अपने गृहोद्यान में लगाया है। उनकी सिंचाई करने के लिए वन्दिनीय सुरललनाए नियुक्त की गयी हैं। वेचारी रोती हुई हाथ से जलपूर्ण कलश ढो-ढो कर उन्हें सींचती हैं। उनके शोक सन्तप्त अश्रुजल के मिश्रण से स्वर्ण कलश का जल भी उष्ण हो जाता है। उसी से उनकी सिंचाई होती है और उनके थाले पङ्किल हो जाते हैं। उन वृक्षों के पुराने पुष्प जो स्वयं पतनोन्मुख हो गये हैं। कही झड़ न जाँय इसी भय से पवनदेव तनिक हिल भी नहीं पाते। यहाँ वृक्षों के सिंचन कार्य का व्यवहार देखने के साथ-साथ एक अनोखी विषय का भी साक्षात्कार होता है कि उष्ण जल के प्रभाव से वृक्ष के पत्ते सूख जाते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि वृक्ष के सूख जाने पर प्रकाश संश्लेषण का कार्य बन्द हो जाता है। कार्बनडाई-आक्साइड का अवशोषण तथा आक्सीजन का उत्सर्जन होने से वायु गतिमान रहा करती है, लेकिन वृक्ष के सूखने पर यह कार्य सम्भव नहीं हो पाता है। इसीलिए उक्त स्थल में वर्णन आया है कि पवनदेव सूखे पत्तों के गिरने के भय स्थिर बन गये हैं। अतः वृक्ष-वनस्पतियों का वायु के गतिमान होने के लिए विशेष महत्त्व है। वायु समस्त जीवधारियों के लिए अत्यावश्यक है। पृथ्वी पर जीवन आक्सीजन पर आधारित होता है। समस्त जीव श्वास के रूप में आक्सीजन लेते हैं तथा कार्बनडाई-आक्साइड छोड़ते हैं। परन्तु वृक्ष-वनस्पति कार्बनडाई-आक्साइड को लेकर स्वयं जीवन धारण करते हैं और आक्सीजन छोड़ते हैं। यह अलौकिक प्राकृतिक व्यवस्था है, जिसे सुधीजन ही समझ सकते हैं।

इस प्रकार कार्बनडाई-आक्साइड और आक्सीजन का सन्तुलन बना रहता है। आक्सीजन गैस भारी होती है और कार्बनडाई-आक्साइड हल्की इसीलिए आक्सीजन तेजी से नीचे आती है और कार्बनडाई-आक्साइड उतनी ही तेजी से ऊपर जाती है। यही है वायु के गतिमान अवस्था का कारण। जङ्गलों के अत्यधिक

---

12. चम्पूरामायण, श्लोक 21 के अनन्तर गद्यांश

कटाई के कारण कार्बनमोनो-आक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। फलस्वरूप पृथ्वी के ताप में वृद्धि हो गयी है। गर्मी के दिनों में अत्यधिक तेजी से तापमान बढ़ जा रहा है। इसके नियन्त्रण के लिए आवश्यक है कि 40 प्रतिशत भू भाग पर वृक्ष-वनस्पतियाँ हों। वर्तमान समय में भारत में 19.27% भू भाग पर ही वृक्ष-वनस्पतियाँ विद्यमान हैं। अतः वृक्ष-वनस्पतियाँ के क्षेत्रफल में और वृद्धि करने की आवश्यकता है।

वृक्ष-वनस्पतियों से सम्बन्धित चमत्कारपूर्ण एवं अनेक हृदयहारी वर्णनों के द्वारा नलचम्पू हमें प्रकृति प्रेम की शिक्षा देता है। नलचम्पू में एक अत्यन्त सुन्दर वर्णन को देखा जा सकता है -

'तत्र च स्थितं श्रममुकुलितनयनारविन्दम् आन्दोलयन्तः कुसुमिततरुन तरलयन्तः शिखिशिखण्डमण्डलानि ताण्डवयन्तस्तनुलतापल्लवनिवहान वहन्तो वहन्निर्झर जल शिशिरशीकरनिकरान, करालयन्तः कुटजकुड्मलानि, मकरन्दविन्दु मुचो मन्दमानन्दयामासुः कम्पितनीपवनाः पवनाः।।[13]

वहाँ वृक्षों को कपाता हुआ, मयूरों को चञ्चल बनाता हुआ, पतली लताओं एवं पल्लवों की पङ्क्तियों को नचाता हुआ, प्रवाहपूर्वक बहते हुए झरनों के शीतल कणों को ढोता हुआ, कुटज के पुष्पों की कलियों को विकसित करता हुआ पराग-बिन्दुओं को बरसाता हुआ, कदम्बवन को कपाता हुआ, पवन थकावट से आँखों को मुकलित किये हुए राजा को शनैः-शनैः आनन्दित कर रहा था। वायु, वृक्ष-वनस्पतियाँ हमारे पर्यावरण समूह के कितने महनीय अङ्ग हैं, चम्पूकाव्यों में इनका विशेष वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ वन को देवता कहा गया है। **'वनदेवताभिः'**[14] हमारी संस्कृति में सम्पूर्ण प्रकृति को देवमयी माना गया है। प्रख्यात जैनचम्पू जीवन्धरचम्पू में पर्यावरण रूप में पशु-पक्षियों पर विशेष ध्यान देते हुए उन्हें अवध्य बतलाया गया है। वृक्ष-वनस्पतियों में दैवी तत्त्व के उद्बोधन से जैन सम्प्रदाय में इनके प्रति प्रेम को प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चम्पू साहित्य भारतीय संस्कृति के विशेष संवाहक हैं। इसमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वृक्ष-वनस्पतियाँ, पशु-पक्षियाँ सबके प्रति श्रद्धा के साथ-साथ दैवी भाव प्रदर्शित किया गया है।

13. नलचम्पू, प्रथमोच्छ्वास/51 के अनन्तर गद्यांश

14. वही/47 के अनन्तर गद्यांश

अध्याय- 6

रूपकों में पर्यावरण का दैव स्वरूप

संस्कृत वाङ्मय में रूपकों का अति विशिष्ट स्थान है। रूपक का मंचन होने के कारण इसे समाज में विशेष रूप से समादर किया जाता है। गद्य एवं पद्य काव्य केवल श्रवणेन्द्रिय द्वारा हृदयाकाश को आनन्द से ओत-प्रोत कर देता है। मञ्चन रूपकों का वैशिष्ट्य है। श्रव्य काव्य में पाठक अपने कल्पना द्वारा बनाये गये भवन का आनन्द लेता है लेकिन नाटक में उसे कल्पना करने की आवश्यकता नहीं होती है, सब कुछ प्रत्यक्ष रहता है और कवि के प्रत्यक्षीकरण से मानव का हृदयाकाश आनन्दातिरेक से भर जाता है। हृदय में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। यही कारण है कि संस्कृत काव्य परम्परा में रूपकों का विशेष महत्त्व है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्यकार जिस परिवेश में रहकर काव्य सृजन करता है, उस परिवेश एवं सामाजिक स्थिति का वर्णन करना उसकी विवशता होती है, क्योंकि जिस परिवेश में कवि जी रहा होता है, उससे अलग साहित्य नहीं बन सकता। साहित्य सदैव सामाजिक परिवेश पर आधारित होता है। प्राचीन समय में भी आज के समान ही पर्यावरण की समस्या थी लेकिन उसके लिए समाज में निदान भी बना हुआ था। समाज में प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण संरक्षण के लिए सचेत रहता था। पर्यावरण ईश्वर की अभिव्यक्ति है। पर्यावरण के सभी तत्त्व हमारे आस्था के विषय थे। उनकी पूजा की जाती थी। कवि प्रकृति के सौन्दर्य का इतना भूखा दिखलाई पड़ता है कि उसके एक-एक अङ्गों का सविस्तार वर्णन कर देता है। कवि प्रकृति का पुजारी होता है। इसीलिए अपने इष्ट के वर्णन में अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है। कवि का यह अर्पण ही प्रकृति की पूजा है।

भारतीय परंम्परा में बहुत प्राचीन काल से ही अपने इष्ट का वर्णन किया जाता रहा है। वेद में भी ऋषि जिस देवता के मंत्रों का दर्शन करता है। उसमें उस देवता को सर्वोच्च स्वरूप में ही पाता है। आर्षकाव्यों में भी यही स्थिति देखने को मिलती है।

महाकाव्य इत्यादि भी इसी का अनुसरण करते हैं, तो भला नाटक इससे अलग कैसे रह सकता है? नाटकों में प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों का वर्णन कवि द्वारा किया जाता है, उससे कवि की प्रकृति के प्रति आस्था और श्रद्धा का परिचय मिलता है। कवि केवल प्रकृति के सुषमा का उपासक ही नहीं होता बल्कि उनके गुणों पर मुग्ध भी होता है। मुग्धावस्था में कवि का हृदय वर्ण्य विषय के साथ तादात्म्य स्थापित कर भावलोक में प्रवेश कर लेता है। तदनन्तर वह प्रकृति के अलौकिक सौन्दर्य की अपने काव्य जगत् में अभिव्यक्ति कर पाता है। अतः कवि द्वारा काव्यों में प्रकृति का वर्णन करना सही अर्थ में प्रकृति का गुणगाान करना है, प्रकृति का भक्ति करना है।

प्रकृति मनुष्य के जीवन में प्रत्येक अवस्थाओं में विद्यमान है। वस्तुतः प्रकृति और पर्यावरण दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। जो वातावरण हमारे चारों ओर विद्यमान है, वहीं तो पर्यावरण है। मनुष्य का जीवन इसी पर्यावरण के प्रसाद पर अवलम्बित है। इसी भावना से संस्कृत कवि वेदान्त का अनुसरण करते ुए सम्पूर्ण सृष्टि में देवत्त्व का दर्शन करते हैं। यही हमारी प्राचीन परम्परा रही है कि प्रत्येक जीव ईश्वर का स्वरूप है। सबमें ईश्वर का वास है। इसी उदात्त भावना से हमारा पर्यावरण पूर्णतः संरक्षित हो सकता है। महाकवि कालिदास अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रारम्भ में सम्पूर्ण सृष्टि को शिव के प्रत्यक्ष रूप में चित्रित कर सबके कल्याण की कामना करते हैं -

'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या, वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरीति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः'।।[1]

अर्थात् जो विधाता की सर्वप्रथम जल रूप सृष्टि है, जो अग्नि विधि पूर्वक हवन की गयी हवि को देवताओं के पास ले जाती है। जो होता है अर्थात् यजमान रूप मूर्ति। जो दो समय का निर्माण करने वाली सूर्य और चन्द्ररूप मूर्ति है। शब्द जिस आकाश का गुण है और जो विश्व में व्यापक होकर विद्यमान है उसकी मूर्ति,

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/1

जिसको विद्वान् समस्त बीजों का कारण मानते हैं वह पृथ्वी रूप मूर्ति और जिससे सभी प्राणी जीवित रहते हैं, वायु रूप मूर्ति है। प्रत्यक्ष रूप से इन आठ मूर्तियों से युक्त ईश्वर (शिव) आप लोगों की रक्षा करें। कालिदास ने जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी तथा वायु इन पांच महाभूतों के साथ-साथ जीवन के लिए चन्द्रमा, सूर्य और यजमान को शिव स्वरूप में प्रतिष्ठित कर दिया है। इसलिए हमे इन सभी तत्त्वों को प्रदूषण से मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए। प्रकारान्तर से कवि ने सृष्टि के समस्त आवश्यक तत्त्वों को शिव रूप प्रदान करके न केवल उनके महत्त्व को बतलाया है अपितु उनके संरक्षण का भी उपदेश दिया है। इनके संरक्षण से हमारा पर्यावरण शुद्ध होगा, जिससे हम स्वस्थ होंगे। कवि समाज को अपनी रचना के माध्यम से प्रकृति के घटकों के प्रति सम्मान का भाव रखने का सन्देश देना चाहता है। यहाँ कालिदास पौराणिक ऋषियों की परम्परा का अनुसरण करते हैं। महाकाव्य से सम्बन्धित अध्यायों में इसका उल्लेख किया जा चुका है। कहने का अभिप्राय यह है कि जो विवरण वेद में थे, वे साधारण जन के लिए पुराण में वर्णित किये गये। परवर्ती साहित्यकार ने भी उसी का अनुगमन किया है। अतः कवि ने उसी दृष्टि से शिव के अष्टविध स्वरूप का वर्णन किया है। कवि का उद्देश्य समाज को इस तथ्य से अवगत कराना है कि जिसे वे सामान्य 'जल' इत्यादि समझते हैं और प्रदूषित करते हैं, वह वस्तुतः सामान्य नहीं, अति विशिष्ट तत्त्व हैं। यह भगवान् शिव का प्रत्यक्ष स्वरूप हैं, इसे प्रदूषित न किया जाय। अन्यथा शिवजी कुपित होंगे और शिव का कुपित होना इस संसार के विनाश का कारण बन सकता है। कवि इसी आशय के साथ शिव की स्तुति करता है।

कालिदास प्रस्तुत श्लोक में 'यजमान' का उल्लेख कर हमारी यज्ञमूलक संस्कृति की ओर भी संकेत करते हैं। कवि इस सृष्टि में एक यज्ञीय व्यवस्था का स्वरूप देख रहा है। सम्पूर्ण जीवन यज्ञमय है। यज्ञ से सृष्टि हुई है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवतगीता में उल्लेख किये हैं कि सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है। कर्मसमुदाय को तुम वेद से उत्पन्न और वेद को अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ जानो। सर्वव्यापी परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित हैं।[2]

2. श्रीमद्भगवतगीता, 3/14-15

इसी भावना से कालिदास ने यजमान का उल्लेख किया है। पर्यावरण को शुद्ध करने में यजमान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यज्ञ के अनुष्ठान में यजमान व्रत धारण करता है। वह शरीर तथा मन से शुद्धता धारण करता है। यज्ञ के लिए पुष्पवाटिका लगाता है। पुष्प की सुगन्ध तथा यजमान द्वारा किये गये यज्ञीय हवन के धूम से वातावरण पवित्र होता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कालिदास ने यज्ञीय धूम का उल्लेख दुष्यन्त के कण्व-आश्रम आगमन के अवसर पर करते हैं -

'भिन्नोरागः किसलयरूचामाज्यधूमोद्गमेन'[3]

अर्थात् यज्ञीय धूम के उठने से कोमल पत्तों की कान्ति की लालिमा नष्ट हो गयी है। कवि आश्रम के यज्ञीय वातावरण की ओर ध्यान आकृष्ट कर यह बताना चाहता है कि यज्ञ से सम्पूर्ण वायुमण्डल शुद्ध हो जाता है। पर्यावरण के शुद्ध होने पर ही हमारा जीवन सुख-समृद्धि को प्राप्त कर सकता है। उत्तररामचरितम् में भवभूति ऋष्यशृङ्ग के यज्ञ का उल्लेख करते हैं। जो बारह वर्ष तक लगातार चलकर पूर्ण हुआ है -

ऋष्यशृङ्गसत्रे गुरुजनस्तदाऽऽसीत।

संप्रतिपरिसमाप्तं द्वादशवार्षिकं सूत्रम्।[4]

सीता परित्याग के अवसर पर गुरुजन ऋष्यशृङ्ग के यज्ञ में सम्मिलित होने गये थे। अब वह बारह वर्षों तक होने वाला यज्ञपूर्ण हो गया है। भगवान् राम भी प्रजाजन के कल्याणार्थ अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किये थे -

'तेन राज्ञाराजक्रतुरश्वमेधः प्रक्रान्तः'।[5]

इस यज्ञ को अश्वमेध राजयज्ञ के नाम से जाना जाता है। जिस यज्ञ से राज्य सुख-समृद्धि को प्राप्त करता है, उसे अश्वमेध कहते हैं। इस यज्ञ से पर्यावरण शुद्ध होता है तथा स्वास्थ्यवर्धक अन्न उत्पन्न होता है। इसके पोषण से प्रजा प्रसन्न होती है। प्रतिमानाटक में भी दिलीप द्वारा विश्वजित यज्ञ करने का वर्णन आया है-

---

3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/15
4. उत्तररामचरितम्, 2/6 के अनन्तर गद्यांश
5. वही,

'अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो।

यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः'।।[6]

भरत को देवकुलिक मूर्तियों का परिचय कराते हुए कहता है कि ये महाराज दिलीप हैं, जिन्होंने विश्वजित यज्ञ में अपनी सारी सम्पत्ति का दान कर दिया था, जिन्होंने धर्म के प्रदीप को प्रकाशित किया है। विश्वजित यज्ञ विश्व विजय की कामना से किया जाने वाला यज्ञ है। इसमें सर्वस्व त्याग की भावना पैदा की जाती है। तिल, तन्दुल, चन्दन, अगर, तगर, घी इत्यादि की यज्ञ में आहुति दी जाती है, जो पर्यावरण संरक्षण के लिए विशेष उपयोगी मानी गयी है। जङ्गल में लक्ष्मण से जब भरत मिलकर प्रणाम करते हैं, तो लक्ष्मण भरत को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं -

'रघुरिव स नरेन्द्रो यज्ञविश्रान्तकोशो भव

जगति गुणानां भाजनं भ्राजितानाम्'।[7]

अर्थात् अपने समस्त ऐश्वर्य को यज्ञ में अर्पित कर देने वाले महाराज रघु की भाँति संसार में देदीप्यमान गुणों के भाजन वनो। यज्ञ की महनीयता लक्ष्मण के इस कथन से ज्ञापित होती है। भास ने अविमारक नाटक में यज्ञ के द्वारा हरि के समान बनने की बात कही है -

'यज्ञैः शुभैर्हरिसमो भव'।[8]

अर्थात् तुम नित्य शुभ यज्ञों के द्वारा हरि के समान बनो। यज्ञ मनुष्य को विष्णु जैसे पालक बनाने में समर्थ है। पंचरात्र में भी कहा गया है कि -

'यज्ञेन भोजय, महीं'।[9]

अर्थात् यज्ञ से सम्पूर्ण पृथ्वी को तृप्त करो। यहाँ श्रीमदभगवत्गीता का ही भाव दृष्टिगोचर होता है, जिसमें कहा गया है -

---

6. प्रतिमानाटकम्, 3/7 के अनन्तर गद्यांश
7. वही, 4/10
8. अविमारकम्, 6/19
9. पंचरात्रम्, 1/20

'देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।
इष्टान् भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तौर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्तेस्तेन एव सः'।।[10]

अर्थात् तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं को उन्नत करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। यज्ञ के द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुम लोगों को बिना माँगे ही इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे। इस प्रकार उन देवताओं के द्वारा दिये हुए भोगों को जो पुरुष उनको बिना दिये स्वयं भोगता है, वह चोर है। त्यागपूर्वक भोग करना ही श्रेयस्कर है। अतः यज्ञमय जीवन जीते रहने से एक दूसरे को उन्नत करते हुए सभी लोग परम कल्याण को प्राप्त हो जायेंगे, यहीं यज्ञ का सन्देश है। इस अर्थ में यज्ञ पर्यावरण संतुलन के लिए परमोपयोगी कार्य है। यज्ञ ऐसा तत्त्व है, जिससे सामाजिक एवं भौतिक दोनों दृष्टि से पर्यावरण शुद्ध होता है। समाज में उत्पन्न मानसिक कलह यज्ञ इत्यादि करने से स्वतः दूर हो जाते हैं। लोग हर्षोल्लास पूर्वक जीवन यापन करते हैं। संस्कृत नाटकों में जल, तड़ाग, नदी और सागर की भी विशेष रूप से महिमा का वर्णन किया गया है। सागर सम्पूर्ण देवों का रम्यस्थल माना जाता है। इसके जैसा विशाल स्वरूप का वर्णन अन्यत्र नहीं प्राप्त होता है, इन्हें भगवान् वरुण कहा जाता है। अभिषेक नाटक में लक्ष्मण जी कहते हैं कि यही हैं भगवान् वरुण। जल पूर्ण मेघ की तरह नीले जल वाले, हार की तरह दीखने वाले, फेनों से पूर्ण वरुण सोते हुए भगवान् के समान दिख रहे हैं जिनके नदी रूप हजार हाथ हैं -

'एष! भगवान् वरुणः
सजलजलधरेन्द्रनीलनीरो विलुलितफेनतरङ्गचारुहारः।
समधिगतनदीसहस्रबाहुर्हरिरिव भाति सरित्पतिः शयानः।।[11]

यहाँ समुद्र को नीले जल वाला कहा गया है, जिसका अभिप्राय श्यामलता से है। भगवान् वरुण का स्वरूप श्याम वर्ण का हैं, चारों ओर से आई हुई नदियाँ

10. श्रीमद्भगवतगीता, 3/11–12
11. अभिषेकनाटकम्, 4/3

इनका हाथ हैं, इन्हीं नदियों से ही ये तृप्त होते हैं। श्रीरामचन्द्र जी लंका पहुंचने के लिए समुद्र में दिव्यास्त्र छोड़े जाने पर सम्भावित स्थिति के सम्बन्ध में कहते हैं-

'मम शरपरिदग्धतोयपङ्क हतशतमत्स्यविकीर्ण भूमिभागम्।

यदि मम न ददाति मार्गमेनं प्रतिहतवाचिरयं करोमि शीघ्रम्'।।[12]

यदि सागर मार्ग प्रदान नहीं करते हैं तो मैं अपने बाणों द्वारा इनके पानी और पङ्क को दग्ध कर दूंगा, मरे हुए मत्स्यों से इनकी खांई पट जायेगी और इनकी तरङ्गमाला शीघ्र समाप्त हो जायेगी। राम का यह कथन आज विस्फोटक आणविक प्रक्षेपास्त्रों के दुष्प्रभाव की ओर संकेत कर रहा है, जिनको प्रभावहीन बनाने के लिए समुद्र में प्रयुक्त किया जाता है। आज भी अनेक परमाणु यंत्रों का प्रयोग सागर में ही किया जा रहा है। इसके परिणाम पर आप स्वयं विचार कर सकते हैं। संसार के सभी देशों के वैज्ञानिक सागर में अपने प्रक्षेपास्त्रों का प्रयोग करके, सागर के जल को प्रदूषित कर रहे हैं, इससे सागर में पल रहे अनेक जीव-जन्तुओं के मरने के साथ-साथ अनेक प्रकार की विषैली गैसों से वायुमण्डल भी दूषित हो रहा है, लेकिन सभी सैन्य शक्ति को मजबूत बनाने की होड़ में परमाणु अस्त्रों का परीक्षण सागर में ही कर रहे हैं, जो हमारे सृष्टि के लिए खतरनाक है और पर्यावरण के लिए अभिशाप है। भगवान् राम के सागर में दिव्यास्त्र छोड़ने के वक्तव्य पर भगवान् वरुण प्रकट होते हैं और कहते हैं -

नारायणस्य नररूपमुपाश्रितस्य कार्यार्थमभ्युपगतस्य कृतापराधः।

देवस्य देवरिपुदेहहरात प्रतूर्ण भीतः शराच्छरणमेनमुपाश्रयामि।।[13]

अर्थात् नर रूप धारी नारायण कार्यार्थी होकर मेरे तट पर आये हैं। मैंने मार्ग न देकर उनके प्रति अपराध किया है, अतः उनके राक्षस संहारक बाणों से भयभीत हो अब मैं उन्हीं की शरण में जा रहा हूँ। ऐसे उदार हैं, सागर देव परन्तु आज हम उनकी कितनी दुर्दशा कर रहें हैं। सागर की शोभा पर भगवान् राम अपने सेवकों से कह रहे हैं -

'क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः

---

12. अभिषेकनाटकम्, 4/12

13. वही, 4/13

क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः।
क्वचिद् वीचीमालः क्वचिदपि नक्रप्रतिभयः
क्वचिद् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः'।।[14]

अर्थात् कही फेन निकलता है, कहीं-कहीं मत्स्य गण पानी को मथ रहे हैं। कहीं शङ्ख भरे पड़े हैं, कहीं जल नीला है, कहीं पर तरंगें उठ रही हैं, कहीं भयंकर नक्र उलट रहे हैं, कहीं भीषण भवरे पड़ रही हैं और कहीं जल स्थिर हैं। सागर के इस दिव्य स्वरूप का वर्णन हमे पर्यावरण संरक्षण की प्रेरणा देता है। उत्तररामचरितम् में भवभूति नदियों की दिव्यता और आश्रम के पवित्रता का वर्णन करते हुए लिखते हैं -

'एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु
वैखानसाश्रिततरूणि तपवनानि ।
येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते
नीवार मुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि'।।[15]

पहाड़ी नदियों के किनारे पर वानप्रस्थियों से सेवित वृक्षों वाले ये वे तपोवन हैं, जिसमें अतिथिसत्कारपरायण कुछ ही मुट्ठीभर नीवार पकाकर गृहस्थजन यम-नियम पूर्वक रहते हैं। पहाड़ी नदी स्वच्छ जल से युक्त होती है। वृक्षों की सघन छाया ही वानप्रस्थियों की निवास निकेतन है। निवार का चावल ही भोजन है। ऐसे दिव्य तपोवन का भवभूति उल्लेख करते हैं। ऐसे ही स्थलों पर निवास करने वाले ऋषि, महर्षि लोग हमारी संस्कृतकाव्य परम्परा को समृद्ध किये हैं, सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य सृजन अरण्यवासियों द्वारा ही किया गया है। उनकी दृष्टि में वन मात्र वन नहीं होते बल्कि तपोवन होते हैं। वे सदैव वृक्ष-वनस्पतियों, नदियों के अविरल प्रवाह को देखकर रोमांचित हो लेखन कार्य में संलग्न हो जाते थे। राम की उक्ति में पर्यावरण की एक मनोहर झाँकी द्रष्टव्य है -

'स्मरसि सुतनु! तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन

---

14. अभिषेकनाटकम्, 4/17
15. उत्तररामचरितम्, 1/25

प्रतिविहितसपर्यासुथस्योस्तान्यहानि।

स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा

स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तमानि'।।[16]

हे सुन्दरी! तुम उस प्रस्रवण पर्वत में लक्ष्मण के द्वारा दी गई सेवा से प्रसन्न हो, हम दोनों के उन सुखमय दिनों का, निर्मल जल वाली नदी गोदावरी का और उसके किनारे पर हमारे बिहार का स्मरण करती हो। जिस समय का यह श्लोक है उस समय भगवान् राम राजमहल में सीता और लक्ष्मण के साथ विराजमान हैं लेकिन जंगल निवास को सुख का दिन कह रहे हैं। प्रकृति के गोद में रहना वास्तव में सर्वस्व के गोद में रहना है। जहाँ राग, द्वेष से दूर हो मनुष्य आत्मचिंतन करता है और सभी में ईश्वर के स्वरूप का दर्शन करता है। उत्तररामचरितम् में गङ्गा, तमसा, मुरला आदि नदियों का वर्णन आया है, जो सजीव मनुष्य के भाँति सीता से वार्तालाप करती हैं। ये नदियाँ सीता की उपदेशिका हैं। सीता उन्हें देवी कहती हैं, उनकी स्तुति करती हैं तथा उनसे मंगल की याचना करती हैं। मुरला राम और सीता के वियोग जनित दुःख पर आश्चर्य व्यक्त करते हुयी कहती है -

'ईदृशानां विपाकोपि जायते परमाद्भुतः।

यत्रोपकारणीभावमायात्येवंविधो जनः'।।[17]

ऐसे सीता-राम सदृश महानुभावों की विपत्ति भी बड़ी विचित्र हो गयी है, जहाँ ऐसे गङ्गा आदि देवी भी सहायक बन गयी हैं। परित्याग के कारण माँ गङ्गा सीता की सहायता करती हैं, उन्हें धीरज बधाती हैं। पंचवटी में सीता जब राम का दर्शन करती हैं, तो उनकी भाव-भंगिमा को पहचान कर तमसा कहती हैं -

'अपरिस्फुनिक्वाणे कुतस्त्येऽपि त्वमीदृशी।

स्तनयित्नोर्मयूरीव चकितोत्कण्ठितं स्थिता'।।[18]

जैसे मेघ की गड़गड़ाहट में मयूरी चकित और उत्कण्ठित हो जाती है, वैसे ही कहीं से आते हुए राम के अस्पष्ट शब्दों को सुनकर तुम चकित और

16. उत्तररामचरितम्, 1/26
17. वही, 3/3
18. वही 3/7

उत्कण्ठित हो रही हो। राम के अचेत होने पर तमसा सीता जी को गूढ़ रहस्य से भी अवगत कराती हैं, जिससे गङ्गा की महनीयता भी परिलक्षित होती है -

'अयि वत्से! भगीरथी प्रसादाद्वनदेवतानामप्य दृश्यासि संवृत्ता'।[19]

वत्से तुम तो गङ्गा जी के प्रसाद से वनदेवताओं के लिए भी अदर्शनीय हो गयी हो। अतः तुम निश्चिन्त रहो, रामचन्द्र जी भी तुम्हें नहीं देख सकते। ऐसी हैं मां गङ्गा_ जो दृश्य को भी अदृश्य बनाने की सामर्थ्य रखती हैं। रामदर्शनोपरान्त सीता के हृदय की अवस्था पर तमसा कहती हैं -

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्वियोगे,
दीर्घस्मिञ्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढकरुणं,
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव।।[20]

अर्थात् इस समय तुम्हारा हृदय निराशा से उदासीन, अकारण परित्याग करने से कलुषित, इस दीर्घ वियोग से अकस्मात् मिलन हो जाने के कारण स्तब्ध, प्रिय के करुणामय विलापों से अत्यन्त शोकाकुल तथा प्रेम के कारण द्रवित सा हो रहा है। तमसा नदी है, परन्तु अपने दैवी गुणों के कारण सीता के हृदयगत भाव को जान लेती है। गङ्गा, तमसा, मुरला आदि नदियों के दैवी स्वरूप का वर्णन कर, भवभूति सभी नदियों के प्रति श्रद्धा और आस्था रखने की प्रेरणा देते हैं। नदियों एवं पुष्पलताओं से अलंकृत पर्यावरण के दिव्य स्वरूप का परिचय महाकवि के शब्दों में देखते ही बनता है -

'इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीर मुक्त,
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज,
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः'।।[21]

---

19. उत्तररामचरितम्, 3/12
20. वही, 3/13
21. वही, 2/20

पर्वत की शोभा का वर्णन करते हुये भवभूति लिखते हैं कि वहाँ मस्त पक्षियों से आश्रित वेतस से गिरे हुए पुष्पों से सुगन्धित शीतल और स्वच्छ जल वाली फल समूह के परिपाक से श्याम वर्ण वाले घने जामुन कुञ्जों में से गिरने से शब्दायमान अनेकों प्रवाहों वाली नदियाँ बहती हैं। यहाँ अविरल प्रवाह पर कवि का विशेष आकर्षण है। महावीरचरितम् में भी भवभूति ने यज्ञ एवं जलाशय निर्माण को श्रेष्ठ कर्म बताया है -

'इष्टापूर्त्त विधेः सपत्नशमनात्प्रेयान्मधोन सखा
येन द्यौरिव वज्रिणा वसुमती वीरेणराजन्वती।
यस्यैते वयमग्रतः विमपरं वशंश्च वैवश्वतः
सोऽयं त्वां तनयप्रियः परिणतो राजा शमं याचते'।।[22]

अर्थात् जो अनेक यज्ञों के सविधि अनुष्ठान तथा कूप, सरोवरादि के विनाश से रक्षक देवराज इन्द्र के प्रिय मित्र हैं। जो स्वर्ग में वज्रधारी इन्द्र के समान इस धरती पर एकच्छत्र वीर शासक हैं। हम लोग जिनसे अग्रसर हैं, जो विख्यात सूर्यकुल में उत्पन्न हैं, वही वयोवृद्ध राजा दशरथ अपने पुत्र-प्रेम में परवश होकर आपसे क्षमा-याचना करते हैं। यज्ञ करना दैवी कर्म है। इससे देवता प्रसन्न होते हैं। राजा लोग बहुत दिन तक यज्ञ करते हैं। कूप और सरोवर का निर्माण भी श्रेष्ठ कर्म माना जाता है। कूप से पेय जल निकाला जाता है। सरोवर में जल एकत्र किया जाता है, जो पीने के साथ-साथ कृषि एवं पशु-पक्षियों के जीवन का आधार होता है। इसलिए प्राचीन समय में राजा लोग सरोवर का निर्माण करते थे, जो मनुष्य एवं पशु-पक्षियों के लिये उपयोगी होता था। नागानन्द नाटक में भी प्रकृति एवं वर्षा के सम्बन्ध को स्थापित करते हुए कहा गया है -

'मधुरमिव वदान्ति स्वागतं भृङ्गशब्दै
र्नतिमिव फलनम्रैः कुर्वतेऽमी शिरोभि।
मम ददत इवार्घ्य पुष्प वृष्टि किरन्तः
कयमतिथि सपर्य्यातंशिक्षिताः शाखिनोऽपि'।।[23]

---

22. महावीरचरितम्, 3/1
23. नागानन्द, 1/12

अर्थात् ये वृक्ष भ्रमरों के झंकार से मानो मधुर स्वागत कर रहे हैं और पुष्प की वर्षा करते हुए मानो पूजा का उपहार दे रहे हैं, देखो तो किस तरह अतिथि पूजा की शिक्षा दी गयी है। यहाँ वृक्षों का सजीव चित्रण किया गया है। जंगल में पहुंचने पर वृक्षों के स्पर्श से वायु संगीतमय बन गयी है। स्वतः गिरे हुए फूल पूजा के लिए उपहार स्वरूप प्राप्त हो रहे हैं। पुष्पों से सुरभित वायुमण्डल स्वच्छ वायु से भर गया है। वृक्ष-वनस्पतियों से सुरभित एक स्थल का वर्णन हर्ष ने इस प्रकार किया है -

'वृष्टि हृष्ट शिखण्डिताण्डवमृतो मुञ्चन्तु काले धनाः
कुर्वन्तु प्रतिरुढ़ सन्ततहरि छस्योत्तरीयं क्षितिम् ।
चिन्वानाः सुकृतानि वीतविपदोनिर्मत्यसर्रमानसैः
मोर्दन्तां सततं वान्धवसुह्रदगोष्ठी प्रमोदाः प्रजाः ।।[24]

अर्थात् हर्षपूर्ण मयूरों का ताण्डव नृत्य रचाते हुए बादल समय-समय पर वर्षा करते रहते हैं। पृथ्वी उगे हुए निरन्तर हरे रंग के धानी रंगवाली की चादर ओढ़े हुए, द्वेष रहित मन से पुष्पों का सम्पादन करते हुए, विपत्तियों से रहित तथा बन्धु-बान्धवों और मित्र जनों की मण्डलियों में प्रमुदित होकर प्रजाजन निरन्तर आनन्द भोगते रहे हैं। यहाँ जलवर्षा के समय उत्पन्न आनन्द का वर्णन किया गया है। वस्तुतः वर्षा आनन्द का प्रतीक है। वर्षा के समय मन कितना ही व्यथित हो, लेकिन वर्षा की बूदें पड़ते ही वह प्रफुल्लित हो जाता है, यही है उसका दैवीगुण। आकाश में काले-कजरारे बादलों की बनी आकृतियाँ भी उल्लास उत्पन्न करने वाली होती हैं। गरजता बादल सबके हृदय को आनन्द विभोर कर देता है। आनन्द ही हमारे जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। जीवन सुख-दुःख के आयामों के साथ निरन्तर रहता है। अनेक अवरोध मानव जीवन से टकराते हैं, लेकिन प्राकृतिक शक्तियों से प्राप्त आनन्द उन्हें इतना शक्तिशाली बना देता है कि वह सदैव अपने प्रगति पथ पर अग्रसर रहता है। प्राकृतिक घटक सदैव देते रहने वाले स्वभाव के ही कारण देवता कहे गये हैं। जीवन के लिए जल, वायु, ताप, पृथ्वी और आकाश का विशेष महत्त्व है। वृक्ष, वनस्पतियाँ, पशु-पक्षियाँ सब एक दूसरे पर आश्रित होकर

---

24. नागानन्द 5/40

पर्यावरण को पुष्ट करते हैं। सबका इस सृष्टि के संचालन में अपना विशेष महत्त्व है, अतः सृष्टि के नियमों को निर्बाध रूप से चलने के लिए हमे प्रकृति की सुरक्षा करनी ही होगी तभी हमारा जीवन भी निर्वाध रूप से चल सकेगा। प्रकृति से हमारा अभेद सम्बन्ध है। हमारा अस्तित्त्व पूर्णतः प्रकृति पर ही आश्रित है। वृक्ष-वनस्पतियों को कालिदास ने अपने नाटकों में विशेष महत्त्व दिये हैं। कण्व और शकुन्तला को वृक्ष कितने प्रिय हैं अनुसूया और शकुन्तला के वार्तालाप से स्पष्ट होता है -

'अनसूया - हला शकुन्तले! त्वत्तोऽपि तातकाश्यपस्याश्रमवृक्षकाः प्रियतरा इति तर्कयामि'। येन नवमालिका कुसुमपेलवात्वमेतेषामालवालपूरणे नियुक्ता'।।[25]

सखी शकुन्तला! पिता काश्यप को आश्रम के वृक्ष तुझसे अधिक प्रिय हैं ऐसा मैं समझती हूँ। अतएव नवमालिका के फूल के तुल्य सुकुमार भी तुमको इनके आलवाल भरने के कार्य में नियुक्त किया है। शकुन्तला के अलौकिक सौन्दर्य और सुकुमारता पर अनसूया का यह कथन है। परन्तु शकुन्तला उसका प्रत्योत्तर देती हुई वृक्षों से अपना सहोदर सम्बन्ध बतलाती है -

न केवलं तातनियोग एव। अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु।[26]

अर्थात् केवल पिता की आज्ञा ही नहीं, मेरा भी इन वृक्षों पर सगे भाई के तुल्य प्रेम है। शकुन्तला यही कहना चाहती है कि वृक्षों को जन्म देने वाली भी पृथ्वी है और हमें पालने वाली भी पृथ्वी ही है। अतः इनमें और हमारे में विभेद नहीं है। पिता के आदेश से मैं इनका सिंचन नहीं कर रही हूँ बल्कि हमारा भी इनके प्रति अगाध स्नेह है। शकुन्तला को वृक्षों से इतना अपनापन है कि मौलश्री का वृक्ष उसे अपने पास स्वयं बुला रहा है -

'एष वातेरितपल्लवाङ्गलीभिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षकः।

यावदेनं सभावयामि'।[27]

अर्थात् यह वकुल (मौलश्री) का वृक्ष वायु के द्वारा हिलाई हुई पत्ते रूपी अंगुलियों से मुझको अपने पास आने के लिए शीघ्रता करने के लिए संकेत कर रहा

---

25. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/17 के अनन्तर गद्यांश
26. वही,
27. वही, 1/20 के अनन्तर गद्यांश

है, तो इसका सत्कार करती हूँ। सत्कार का तात्पर्य यहाँ सिंचन कार्य से है, आश्रम के वृक्षों को जल दिया जाता था, जिससे वे पुलकित रहें। आश्रमवासी तपोवन के जीवों के रक्षक होते हैं। जंगल ही उनका आश्रय हैं। अरण्यवास दिव्य जीवन की प्राप्ति का साधन है। जब दुष्यन्त जंगल में आखेट के लिए पहुँचते हैं, तो वन्य जीवों की रक्षा के निमित्त आश्रमवासी एकत्र हो जाते हैं -

'भो भोस्तपस्विनः सन्निहितास्तपोवनसत्त्वरक्षायैभवत।

प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः'।।[28]

हे तपस्वियो, तपोवन के जीवों की रक्षा के लिए आप लोग एकत्र हो जाइए। शिकार के लिए विचरण करने वाला राजा दुष्यन्त पास में ही है। ब्रह्मचारियों को भय है कि आश्रम के पशु-पक्षी कहीं दुष्यन्त के शिकार का भाजन न बन जाये। केवल शकुन्तला को ही आश्रम के वृक्ष और पशु-पक्षी प्रिय नहीं हैं, बल्कि वृक्ष और पशु-पक्षी को भी शकुन्तला प्रिय है -

न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव त्वयोपस्थितवियोगस्य

तपोवनस्यापि तावत्समवस्था दृश्यते। पश्य -

'उद्गलित दर्भकवला मृगाः परित्यक्तनर्तना मयूराः।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः'।।[29]

तपोवन के वियोग से केवल तू ही दुःखित नहीं है, अपितु तुम्हारे विदाई का समय उपस्थित होने के कारण तपोवन की भी तेरे समान ही अवस्था दिखाई पड़ रही है। मृगियों ने कुशा के ग्रास उगल दिये हैं, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है और लताएं पीले पत्तों को गिराकर मानो अपने आँसू गिरा रही हैं। शकुन्तला के पतिगृह जाने के समय शकुन्तला द्वारा पाला गया हिरन उसे जाने से रोक रहा है, मातृवत्सला का भाव देखते ही बनता है -

'यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां

तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।

---

28. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/29 के अनन्तर गद्यांश

29. वही, 4/12

श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।।[30]

अर्थात् जिसके कुशाग्रों से विधे हुए मुँह में तूने घावों को भरने वाली इंगुदी का तेल लगाया था। वह यह श्यामाक की मुट्ठियों से पाला हुआ और पुत्रवत् माना हुआ मृग तेरा मार्ग नहीं छोड़ रहा है। अतः पशु को भी मानव से कितना प्रेम होता है। इसका अनुमान यहाँ लगाया जा सकता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मधुरिका एवं परभृतिका नामक दो स्त्री पात्र उद्यान पालिका हैं। वे उद्यान की रक्षा में तत्पर हैं। उन्हें पर्यावरण से विशेष लगाव है। परभृतिका बहुत ही विचारशील एवं धर्मपरायण स्त्री है। वह आम्रमञ्जरी को देखकर वसन्तऋतु का अभिनन्दन कर रही है, कुछ लाल हरे श्वेत रंग से मिले हुए, हे वसन्त मास के जीवन स्वरूप, हे आम्रकुल तुम दिखाई पड़े हो; हे बसन्तऋतु के मंगल तुम्हे प्रसन्न करती हुई प्रणाम कर रही हूँ-

'आताम्रहरितपाण्डुर जीवित सर्वं वसन्तमासस्य।
दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमंगलत्वां प्रसादयामि'।।[31]

आम्र के बौर को प्रणाम करती है। उन्हे मंगल दायक बताया गया है। आम्रवृक्ष में दैवीभाव अभिव्यञ्जित हो रहा है। वृक्ष कार्बनडाई-आक्साइड का अवशोषण कर बदले में आक्सीजन दे रहे हैं, मानों वे देवताओं की रक्षा में विषपान करने वाले शिव के लोकमंगलकारी सहज स्वभाव का प्रदर्शन कर रहे हैं। स्वयं विषपान करते हैं, बदले में प्राण वायु देते हैं। वायु जीवन के लिए अनिवार्य तत्त्व है। वायु के बिना हमे क्षणभर में ही घुटन होने लगती है। वायु को प्राणवायु की संज्ञा इसीलिए दी गयी है कि इसके बिना हम निष्प्राण हो जाते हैं। अतः शुद्ध वायु को देने वाले वृक्ष को कालिदास सादर नमन करते हैं। रत्नावली नाटिका के भरतवाक्य में महाकवि हर्ष द्वारा दिये उद्बोधन में पर्यावरण की अभिव्यञ्जना द्रष्टव्य है -

'उर्वीमुद्दामसस्यां जनयतु विसृजन् वासवोवृष्टिमिष्टा
मिष्टैस्त्रैष्टपानां विदधतु विधिव प्रीणनं विप्रमुख्याः।

30. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/14
31. वही, 6/2

आकल्पान्तं च भूयात्समुपचितसुखः संगमः सज्जनानां

निःशेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरो दुर्जया वज्रलेपाः'।।[32]

अर्थात् अभिलषित वर्षा करता हुआ इन्द्र, पृथ्वी को समृद्ध धान्य वाली बनावें। श्रेष्ठ ब्राह्मण विधिपूर्वक यज्ञों द्वारा देवों को प्रसन्न करें। सुख की वृद्धि करने वाला सज्जनों का समागम प्रलयकाल पर्यन्त बना रहे। दुर्जय और वज्र के समान चुभने वाले दुर्जनों के वचन पूर्णरूप में शान्ति को प्राप्त होवें। प्रस्तुत स्थल में महाकवि वर्षा, पृथ्वी, यज्ञ की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, तीनों पर्यावरण के महनीय घटक हैं। यज्ञ से देवता प्रसन्न होकर पृथ्वी पर वर्षा करते हैं। वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है, जिससे मनुष्य समृद्धि को प्राप्त करता है। शूद्रक ने भी वृक्षों को महान् आनन्द का दाता बतलाया है -

अशरणशरणप्रमोदभूतैर्वनतरुभिः क्रियमाणचारुकर्म।[33]

आश्रय हीनों को आश्रय तथा आनन्द देने वाले वन वृक्षों के द्वारा मनोहर कार्य किया जा रहा है। वृक्ष-वनस्पतियाँ सबको अपनी शीतल छाया में आश्रय देते हैं। वर्षा और गर्मी या फिर जाड़ा ही क्यों न हो हर समय वे मनुष्य को सुख देते हैं। भट्ट नारायण अपने भरतवाक्य में लिखते हैं -

'अवनिमवनिपालाः पान्तु वृष्टिं विधत्तां

जगति जलधरालीशस्येपूर्णास्तु भूमिः ।

त्वयि मुरनरकारौ भक्तिद्वैतयोगाद्

भवतु ममसुदीर्घहव्यमश्नन्तु देवाः'।।[34]

राजा लोग पृथ्वी का पालन करें। मेघमाला संसार में वर्षा करे। धरती धन-धान्य से पूर्ण हो। मुर तथा नरकासुर नामक दैत्यों के शत्रु श्रीकृष्ण में मेरी अनन्य भक्ति हो और देवता चिरकाल तक हव्य द्रव्यों का भोग करें। इस भरतवाक्य में भट्टनारायण ने मेघ से जल बरसाने तथा पृथ्वी को धन-धान्य से पूर्ण होने की कामना की है। शूद्रक भी अपने भरतवाक्य में लिखते हैं कि -

---

32. रत्नावली, 4/22
33. मृच्छकटिकम्, 8/4
34. वेणीसंहार, 6/47

'क्षीरिण्यः सन्तु गावो भवतु वसुमती सर्वसंपन्नासस्या
पर्जन्यः कालवर्षी सकलजनमनोनन्दिनो वान्तु वाताः।
मोदन्तां जन्मभाजः सततमभिमता ब्राह्मणाः सन्तु सन्तः
श्रीमन्तः पान्तु पृथ्वीं प्रशमितरिपवो धर्मनिष्ठाश्च भूपाः'।।[35]

अर्थात् गौंए प्रचुर दूध वाली हों, पृथ्वी सब प्रकार के धान्य से पूर्ण हों। मेघ समय पर बरसने वाले हों, समस्त जनों के मन को आनन्दित करने वाली वायु चले। प्राणधारी निरन्तर सुखी रहें। पूज्य ब्राह्मण लोग उत्तमशील वाले हों, समृद्धिशाली शत्रुओं का नाश करने वाले तथा धर्मनिष्ठ राजा पृथ्वी का पालन करें। पुरुरवा भी बादल को बरसने के सन्दर्भ में कहता है कि "अरे ओ बादल! यह क्रोध समेट लो, मैं आज्ञा देता हूँ, अनवरत वृष्टि करके दिशाओं को रमणीय बनाओ। अरे सुनो! धरती पर घूमते-घूमते यदि मैं अपनी प्राणप्रिया को देख लूंगा, तदनन्तर तुम जो उत्पात करोगे, वे-वे सह लूंगा -

'जलधर संहरैतं कोपमाज्ञातः अविरल-धारासार-दिशामुखकान्तः।
ए एह पृथ्वी भ्रमन यदि प्रियां प्रेक्षे तदा यद यत् करिष्यसि तत् तत सहिष्ये'।।[36]

कवि मुरारी भी पर्यावरण को ध्यान में रखकर अपने भरतवाक्य में कहा है -

'देवस्यात्मभुवः कमण्डलुजलस्रोतांसि मन्दाकिनी
गङ्गाभोगवतीमयानि पुनते यावत्त्रिलोकीमिमाम्।
तावद्वीरयशोरसायन मधुस्यन्दः कवीनामयं
जागर्तु श्रुतिशष्कुली वलयतिव्योमावगाहीगुणः'।।[37]

अर्थात् ब्रह्मा के कमण्डलु का जल प्रवाह मन्दाकिनी, गङ्गा तथा भोगवती जब तक तीनों लोक को पवित्र करती रहे तब तक यह वीरकीर्ति गाथा रूप वर्णामृत प्रवाह लोगों का कानरूप आकाश का गुण बना रहे। कवि नदियों के महात्म्य का वर्णन किया है। वस्तुतः नदियाँ मात्र जलधारा नहीं जो युगों से बहती आ रही हैं,

---

35. मृच्छकटिकम्, 10–61
36. विक्रमोर्वशीयम्, 3/8
37. अनर्घराघव, 7/152

बल्कि ये भारतीय परम्परा में देवधारायें हैं। तटों पर बसे नगर इस दैवी धारा के प्रसाद पर टीके हुए हैं। ये सदा नीरा ब्रह्मनन्दा हैं। इनकी महिमा का गान सुधा सौन्दर्य का ध्यान और तोयामृत के समान है। इनके ध्यान मात्र से विघ्न बाधाएं दूर हो जाती हैं। कृष्ण मिश्र का प्रबोधचन्द्रोदय के रूप में भरत वाक्य हमें पर्यावरण की जीवन्तता का संदेश दे रहा है -

'पर्जन्योऽस्मिञ्जगति महतीं वृष्टिमिष्टां विधत्तां
राजानः क्ष्मां गलितविविधोपप्लवाः पालयन्तु ।
तत्पोन्मेषोपहततमसस्त्वप्रसादान्महान्तः
संसाराब्धिं विषयममतातङ्कपङ्कतरन्तु'।।[38]

अर्थात् मेघ इस धरा पर यथेच्छ वृष्टि करे, विविध उपद्रवों से रहित राजा लोग पृथ्वी का पालन करें, तुम्हारी कृपा से प्राप्त ज्ञान के उदय से अज्ञान को विनष्ट कर महान् जन विषय ममताजन्य आतङ्क रूप पङ्क वाले भवसागर को पार करें। यहाँ कवि का आशय जलरूप मेघात्मक तत्त्व से है। जल ही सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम था। इसी से सम्पूर्ण सृष्टि का जन्म हुआ। अतः जल का प्रदूषण मुक्त संचयन एवं संरक्षण करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य के सभी रूपकों में पर्यावरण का दैव स्वरूप की प्रबल अभिव्यञ्जना प्रस्तुत की गयी है। वृक्ष, वनस्पति सभी हमारे लिए पूजनीय हैं, जल और वायु जीवन के मूल आधार हैं। लोक प्रचलित (जल+वायु) जलवायु शब्द जीवदायिनी चेतना को प्रतिध्वनित करता है तो वातावरण (वात + आवरण) वायु का वह आवरण है, जिससे विरहित हो जाने पर जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। संस्कृत के महाकवियों ने सभी जीवधारक पर्यावरण घटकों का अभिवन्दन किये हैं। कवि स्थल-स्थल पर इनकी प्रति अपनी कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित कर अपनी वाणी को सार्थक करता है। यज्ञ भारतीय संस्कृति की अनादि काल से चलने वाली पुनीत परम्परा है, जो आज भी किसी न किसी रूप में प्रवाहित हो रही है। लोकमंगल की भावना को साकार करने के लिये यज्ञानुष्ठान किया जाता है। पशु-पक्षी भी हमारे ही समान चेतन प्राणी हैं। वे भी

---

38. प्रबोधचन्द्रोदय, 6/33

परम पिता परमेश्वर को अत्यन्त प्रिय हैं। उनके प्रति आत्मीयता का भाव रखना हमारा परम धर्म है। पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पति की उपेक्षा अपनी उपेक्षा है। ईश्वरीय अभिव्यक्ति होने के कारण ये पूज्य हैं। मुनिगण इनमें साक्षात् ईश्वर का दर्शन करते हैं। ईश्वर ने इनका साहचर्य प्रदान कर मानव समाज को अक्षय वरदान दिया है। ईश्वर हमारे ऊपर कृपा करके ही उपहार स्वरूप इन्हें प्रदान किया है। यदि ईश्वर के इस उपहार को हम अनावश्यक नष्ट करेंगे तो ईश्वर हमें कभी क्षमा नहीं करेंगे। यदि इस दैवी वरदान का समादर नहीं कर सकें तो यह उसी तरह से अभिशाप बन जायेगा, जिस तरह से भगवान् शंकर द्वारा दिया गया भस्मासुर को वरदान उसकी भोगवादी तीव्र लिप्सा के कारण अभिशाप बन गया। इसीलिए मुक्त हृदय से ऋषियों ने एक ही सत् स्वरूप परमात्मा के अनेक रूप को पर्यावरण के रूप में अंगीकार किया है। परिणामतः हम भरतमुनि की परम्परा में गाये जाने वाले मांगलिक नान्दिपाठों एवं शान्तिवर्धक भरत वाक्यों का हृदयंगम कर अपनी आर्ष संस्कृति की ओर उन्मुख होकर अपनी प्राचीन गरिमा को प्राप्त करें।

उपसंहार

संस्कृत वाङ्मय पर्यावरण संरक्षण की प्रेरणा देने वाला साहित्य सृष्टि है। यही कारण है कि पर्यावरण को ईश्वर स्वरूप मानकर उसके संवर्धन एवं संरक्षण की संकल्पना प्रस्तुत की गयी है। वस्तुतः यहाँ संसार को स्वतन्त्र सत्ता न मानकर देवस्वरूप में चित्रित किया गया है। कण-कण में ईश्वर का निवास है। यही कारण है कि भारतीय समाज में पर्यावरण संरक्षण की दैव चेतना अनादिकाल से चली आ रही है। सम्पूर्ण वैदिक एवं लौकिक साहित्य इसी भावना से ओत-प्रोत है। प्राकृतिक शक्तियों में दैवी स्वरूप की प्रतिष्ठा करके मानवोचित संवेदनाओं तथा अनुभूतिओं से जोड़ने का सहज प्रयास रहा है। वेद प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति करते हैं। स्तुत्य की जीवनदायिनी एवं मंगलकारिणी स्तुति की जाती है। प्राकृतिक तत्त्वों का जो दैवीस्वरूप प्रदर्शित किया गया है, वह पर्यावरण चेतना का मूल स्रोत कहा जा सकता है। वैदिक ऋषि सुरम्य प्राकृतिक वातावरण में रहकर ही मन्त्रों का दर्शन करता है और आत्मदर्शन की प्रेरणा ग्रहण करता है। आर्ष काव्य का सृजन तपोवनों में रहकर किया गया है। ऋषियों की वाणी पर्यावरणीय तत्त्वों का गुणगान करती हुई थकती नहीं है। यद्यपि परवर्ती गद्य, पद्य, चम्पू एवं नाट्य साहित्य अरण्य में रहकर राजमहलों से संवर्धित होकर ही रचे गये हैं। फिर भी पर्यावरण की जीवनदायिनी प्रेरणा से ही पूरी तरह ओत-प्रोत हैं। भला परवर्ती कवि ऋषियों द्वारा निर्मित उपजीव्य काव्यों से अप्रभावित कैसे रह सकते हैं।

सभी कालों में मानव का पर्यावरण से सहयोगात्मक एवं सृजनात्मक संबंध रहा है। मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों के संरक्षण के लिए पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पति, पर्वत-पठार, नदी, सागर एवं जलाशय आदि सबमें दैवभाव रखकर सबकी पूजा करता है। प्राणिमात्र के लिए ये प्राकृतिक तत्त्व सर्वस्व अर्पण की शक्ति रखने वाले हैं।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान के आधार स्तम्भ वेद हैं। फलतः प्राकृतिक तत्त्वों को दैव स्वरूप मानकर ऋषियों द्वारा विश्व की मंगल कामना की गयी है। वैदिक ऋषियों की दृष्टि से पंचमहाभूत देव स्वरूप हैं। पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पति सभी इनके संरक्षणीय एवं संवर्धनीय हैं। पीपल, वट, तुलसी, नीम इत्यादि सभी वैदिक युग से ही पूजनीय हैं। वृक्षों को देवताओं का सदन बताया गया है। मात्र वृक्षों की पूजा करने पर पृथ्वी के असंख्य देवताओं की पूजा स्वतः मान ली जाती है। वेदों में वृक्षों को वायु का शोधनकर्त्ता बतलाया गया है। नदियों के अविरल प्रवाह का वेद सर्वत्र स्तुतिगान करता है। नदी सदैव बहना चाहती हैं। इन्हें भी देवता माना गया है। यज्ञीय अनुष्ठान के माध्यम से प्राकृतिक घटकों की रक्षा का मार्ग सुझाया गया है।

सुहृद शैली के प्रवर्तक हमारे आर्षकाव्य पर्यावरण की रक्षा के लिए सदैव प्रेरित करते हैं। रामायण, महाभारत और पुराण सभी अपने महनीय उपाख्यानों द्वारा प्रकृति संरक्षण का सन्देश देते हैं। यहाँ भी वृक्ष पूजा, नदी पूजा, पंचभूतों की पूजा एवं यज्ञ का उल्लेख सम्प्राप्त होता है। रामायण में राम के वनवास काल में प्रकृति के दैवी स्वरूप का चित्रण किया गया है। सीता अपने पति और परिवार की रक्षा के लिए वृक्षों की पूजा करती हैं। मंगल की कामना से यमुना और गंगा से प्रार्थना करती हैं और सकुशल राजमहल वापस आने पर भव्य रूप से पूजन का संकल्प भी लेती हैं। श्रीकृष्ण का जीवन गाय-बछड़ों के मध्य पालित-पोषित ही नहीं होता बल्कि ये गाये इनकी धराधाम पर अवतरण की सार्थकता भी सिद्ध करती हैं। राम का जीवन चरित अरण्य निवास के क्रिया-कलापों एवं श्रीकृष्ण का जीवन ग्वाल-बाल सहित गाय-बछड़ों के बिना अधूरा सा लगता है। रामचन्द्र जी बन्दर और भालू की सेना से रावण जैसे महान् पराक्रमी को परास्त करने में समर्थ हो सके। श्रीराम हम मानवों को वन्य जीवों की महत्ता का बोध कराना चाहते थे। वन्य प्राणी सर्वथा उपेक्षणीय ही नहीं वरन् सदैव संरक्षणीय हैं। ये प्रकृति देवी के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। किसी भी अंग में विकृति आने पर प्रकृति अपंग हो जायेगी। अपंग प्रकृति हमारी रक्षा करने में कैसे समर्थ हो सकती है?

लौकिक कवियों द्वारा सृजित काव्य हमें कान्ताशैली के माध्यम से प्रकृति की रक्षा का उपदेश देते हैं। गद्य, पद्य, चम्पू एवं रूपक सभी में प्रकृति रक्षा के सूत्र भरे पड़े हैं। सबमें प्रकृति के स्वरूप का मनोहारी चित्रण किया गया है।

बाणभट्ट ने पर्यावरण के सुगठित स्वरूप का वर्णन किया है तो दण्डी ने पर्यावरण के विकृत रूप अकाल का वर्णन कर सबको पर्यावरण की समस्या से आगाह किया है। संरक्षित पर्यावरण से ही सुवृष्टि होती है और सुवृष्टि से पर्याप्त अन्न होते हैं। कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष इत्यादि सभी ने पञ्चमहाभूतों को देवत्त्व प्रदान किया है। रघुवंश, कुमारसम्भवम् अष्टधा प्रकृति का पुजारी है तो किरातार्जुनीयम् पञ्चमहाभूतों का गुणगान करता है। पशु-पक्षी, वृक्ष, वनस्पति सबका काव्य आदर करते हैं। चम्पू काव्यों में पशु-पक्षियों एवं वनस्पतियों के संरक्षण एवं संबर्धन के लिए विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है।

रूपक काव्य हमारे जीवन के निकष माने जाते हैं। इनमें जीवन के सभी मूलभूत आवश्यकताओं को समाहित किया गया है। पर्यावरण के महनीय तत्त्व होने के कारण इसके रक्षा के निमित्त सभी नाटककारों ने इन्हें देवभाव से मण्डित किया है। कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल के मङ्गलाचरण में ही प्रकृति के अष्टस्वरूपों को शिव का अष्ट स्वरूप बताया है। ये सभी हमारे जीवन के अनिवार्य तत्त्व हैं। पशु-पक्षियों, वृक्ष-वनस्पतियों से सहोदर सम्बन्ध दिखलाकर कवि ने सदैव इन्हें रक्षणीय बतलाया है। सभी नाटकों के भरतवाक्यों में पुष्ट पर्यावरण के लिए प्रार्थना की गयी है। पुष्ट पर्यावरण ही हमारे धन्य-धान्य का जनक होता है। समुचित धन्य-धान्य से ही प्रजाएं प्रसन्नचित रहती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत काव्य में सर्वत्र प्रकृति को देवमय मानकर उसके संरक्षण की प्रेरणा दी गयी है। पर्यावरण के संरक्षण से ही जीवनघातक ग्लोबल वार्मिंग और पर्यावरण प्रदूषण पर विजय प्राप्त किया जा सकता है। यह अंधाधुन्ध प्रकृति के दोहन से उत्पन्न हुई समस्या है। आज पूरा विश्व प्राकृतिक संसाधनों का निर्ममता से दोहन कर रहा है। किसी को भी इसके दुष्परिणाम की चिन्ता नही है। मनुष्य भौतिक संसाधनों पर इतना आश्रित हो गया है कि प्राकृतिक सत्ता का स्वरूप ही भूल गया है। त्यागपूर्वक जीवन जीने का मूल्य ही समाप्त हो गया है। वह प्रकृति को जड़ एवं निष्प्राण समझकर केवल प्रेयमार्ग का पथिक बना हुआ है। परन्तु यह कभी भी नही भूलना चाहिए कि प्रकृति जड़ नही परम् चेतन है। वैदिक मन्त्रों में वनस्पतियों के शान्ति हेतु मन्त्र दिये गये हैं। अन्तरिक्ष की शान्ति के लिए कामना की गयी है। प्रकृति से हमारा आशय वृक्ष,

वनस्पतियाँ, नदियाँ, समुद्र, जलाशय, पर्वत, पठार, पशु-पक्षियाँ इत्यादि से है। सूर्य, चन्द्र एवं ग्रह–उपग्रह सभी इसके अङ्ग हैं। सभी हमारे जीवन के नियामक हैं।

यज्ञमूलक संस्कृति का सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय समादर करता है। यज्ञ में आहुति स्वरूप दिये गये द्रव्यों से निकले धूम पर्यावरण को समृद्ध करते हैं। समृद्ध पर्यावरण से सुवृष्टि होती है और सुवृष्टि से पर्याप्त अन्न पैदा होता है। अन्न से हम जीवन धारण करते हैं। यह मङ्गलकारी प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यज्ञ प्रकृति से मिले पदार्थों को पुनः प्रकृति को सौपने का परम् पवित्र विश्वास है। यज्ञ से हम देवता को प्रसन्न करते हैं। देवता हमें अन्नादि से प्रसन्न कर देते हैं। प्रकृति का यह अद्भुत नियम है। परस्पर अर्पण के भाव से सबका कल्याण होता है। प्रकृति ईश्वर का दर्पण है। इसमें ईश्वर के विराट स्वरूप का दर्शन होता है। इसीलिए संस्कृत काव्यों में सम्पूर्ण प्रकृति को देवत्त्व प्रदान किया गया है। इन्हीं तत्त्वों से हमारा शरीर निर्मित है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड के परस्पर विनिमय और सहयोग से जीवन यात्रा सम्भव है। इस चराचर जगत् में ईश्वर ही विद्यमान है। अतः जीवनोपयोगी प्राकृतिक सम्पदाओं का दैवी भाव से ही उपयोग करना चाहिए।

पशु-पक्षियों एवं वृक्ष-वनस्पतियों के महिमा का वर्णन भी पर्याप्त रूप से संस्कृत काव्यों में मिलता है। पशु-पक्षियों का भी पर्यावरण संरक्षण में महनीय योगदान है। ये भी प्रकृति के अङ्ग माने जाते हैं। प्रकृति का कण-कण पर्यावरण की सुरक्षा करता है। प्रकृति के किसी भी तत्त्व को अनावश्यक नही समझना चाहिए। पर्वतीय वनौषधियाँ हमारे लिए स्वास्थ्यकर हैं। इन्हें ग्रहण करने से पूर्व हम इनसे निवेदन करते हैं। पीपल, वट, नीम, तुलसी इत्यादि वृक्षों में साक्षात् भगवान् विराजते हैं। इनके पूजन से परमात्मा प्रसन्न होकर कृपा करते हैं। समर्पण का भाव पीपल, वट, तुलसी, नीम एवं पशु-पक्षियों के प्रति जितना संस्कृत काव्यों में दर्शाया गया है, उतना शायद ही कहीं देखने को मिल सकता है। अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, वायु आदि सभी घटकों के प्रति श्रद्धा का भाव हमारे कव्यों में विद्यमान हैं। अग्नि, सूर्य, चन्द्र हमारे उपास्य देव हैं। जल भगवान् विष्णु का वासस्थल है। वायु वह महनीय तत्त्व है, जिसके संचरण से चेतना का परिष्कार होता है। पशु-पक्षियाँ ही देव के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। यही कारण है कि वाहन के रूप में वे पशु-पक्षियों को ही अपनाते हैं। सभी ईश्वरीय साधन हैं। इनसे पर्यावरण पुष्ट होता है।

पर्यावरण एक मन्दिर है, जिसका किसी सम्प्रदाय या विशेष धर्म से सम्बन्ध नहीं है। यह ऐसा पवित्र आवरण है, जो एक ही साथ सभी धर्मावलम्बियों को आश्रय प्रदान करता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश के समष्टि को पर्यावरण कहा जाता है। संसार का प्रत्येक प्राणी इसी के आश्रय में रहकर सुखपूर्वक अपना जीवन-यापन करता है, यही जीवनदायक तत्त्व है। इससे अलग जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अतः इस पवित्र आवरण की रक्षा करना सभी धर्मावलम्बियों का पुनीत कर्त्तव्य है। पर्यावरण किसी के साथ विभेद नही करता बल्कि सबकों बराबर देता ही रहता है, इसीलिए हमारे ग्रन्थों ने इन्हें सभी के लिए रक्षणीय कहा है। वनस्पति, पशु-पक्षी इत्यादि सब पर समादर की भावना संस्कृत काव्यों में व्यक्त की गयी है। ये सभी प्रकृति के महत्त्वपूर्ण घटक होने के कारण पर्यावरण संरक्षण में महती भूमिका का निर्वहन करते हैं। ये प्रकृति को दिव्य स्वरूप प्रदान करने वाले तत्त्व हैं। इनका संरक्षण करना ही धर्माचरण है। इनकी निष्काम भाव से पूजन करने पर हृदय निर्मलता को प्राप्त करता है। तदन्तर मानव परमगुह्य आत्म स्वरूप का दिग्दर्शन करने में समर्थ होता है। ग्रह, नक्षत्र, तारा, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि सभी जीवन के नियामक हैं। यांत्रिक ऊर्जा, प्रकाश, आकर्षणशक्ति, ध्वनि, विद्युत आदि सभी प्रकृति जन्य हैं। इनका दैवी भाव से सदुपयोग करना ही श्रेयस्कर है। इस धरा-धाम पर जो भी दृष्टिगोचर होने वाला पदार्थ है, सब प्रकृति का मूर्त स्वरूप ही है। सबमें ईश्वरीय भावना रखना चाहिए। ईश्वर से भिन्न यहाँ कुछ भी नहीं है, ईश्वर ही पूर्ण है। पर्यावरण परमात्मा की पूर्ण अभिव्यक्ति है। इससे तादात्म्य भाव रखकर ही मानव सुख-शान्ति को प्राप्त कर सकता है -

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ग्रन्थ–सूची

मूलग्रन्थ

अग्निपुराण	:	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1998।
अनर्घराघव	:	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1984।
अर्थववेद	:	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1960।
	:	युग निर्माण योजना, मथुरा, उ0 प्र0 संस्करण-2008।
अर्थशास्त्र	:	भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-1990।
अमरुशतकम्	:	चौखम्बा संस्कृत सीरीजआफिस, वाराणसी, पंचम्- संस्करण, 1995।
अवन्तिसुन्दरी	:	अनन्तशयन विश्वविद्यालय, शुरनाड्कुंजन पिल्ल, एए पौरस्त्य ग्रन्थ प्रकाशन, प्रथम-संस्करण, 1954।
अभिषेकनाटक	:	(भासनाटकचक्रम्) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1995।
अभिज्ञानशाकुन्तल	:	कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1995।
अभिमारक	:	(भासनाटकचक्रम्) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1991।
ईशावास्योपनिषद्	:	मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, वाराणसी।
उत्तररामचरित	:	साहित्य भण्डार, मेरठ, संस्करण- 2004।
ऋग्वेद	:	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1991।
	:	युगनिर्माण योजना, मथुरा, उ0 प्र0, संस्करण-2008।

ऐतरेयब्राह्मण : आनन्द आश्रम, पूना, संस्करण- 1930।

ऋतुसंहार : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1998।

कर्णानन्द : (श्री कृष्ण गोस्वामी) मोतीलाल बनारसी दास, पब्लिशर्स प्रा0 लि0, दिल्ली, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1990।

कर्पूरमञ्जरी : कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1983।

कठोपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण-1998।

: चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1977।

करुणाकटाक्षलहरी : भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी, प्रथम- संस्करण, 1977।

कादम्बरी : कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1998।

काव्यादर्श : चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, तृतीय-संस्करण, 1984।

: मेहरचन्द लक्ष्मनदास पब्लिशर्स, दिल्ली, प्रथम- संस्करण, 1973।

किरातार्जुनीय : चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1986।

कुमारसम्भव : कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1997।

गजेन्द्रमोक्ष – खण्डकाव्य : (डॉ. गोपीनाथ टण्डन) वारणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्रथम-संस्करण 1991।

चम्पूरामायण : कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, द्वितीय–संस्करण, 1998।

चम्पूभारत : मुन्शीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 1983।

छान्दोग्योपनिषद् : (ईशादिदशोपनिषद्) मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी, दिल्ली, पटना, प्रथम-संस्करण, 1964।

तैत्तरीय ब्राह्मण : मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी, दिल्ली, मद्रास, संस्करण- 1985।

दशकुमारचरित : चौखम्बा अमर भारतीय प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ- संस्करण, 2004।

: मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, संस्करण- 1972।

देशोऽयंकुरूतेप्रोन्नति : (डॉ. हरिनारायण दीक्षित) ईस्टर्नबुक लिंकर्स, दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 1992।

नागानन्द, : मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी, द्वितीय-संस्करण,1970।

नारदपुराण : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम-संस्करण, 1990।

नीतिशतक : विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 2003।

नाट्यशास्त्र : भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1968।

नलचम्पू : चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पञ्चम-संस्करण, 2003।

नैषधीयचरित : कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 2002।

पञ्चतन्त्र : कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, प्रथम-संस्करण,1993।

पद्मपुराण : आनन्द आश्रम संस्कृत सीरिज, पूना, प्रथम-संस्करण, 1893-1894।

प्रतिमानाटक : (भासनाटकचक्रम्), चौखम्बा विद्याभवन, प्रथम-संस्करण 1998।

प्रबोधचन्द्रोदय : कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1977।

बालचरित : (भासनाटकचक्रम्), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1998।

बुद्धचरित : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण- 2002।

भट्टिकाव्य : चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, नवम्-संस्करण, 1988।

ब्रह्मपुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण-सं. 2060।

ब्रह्माण्डपुराण : कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, प्रथम–संस्करण, 1983।

भागवतपुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण- 24, सं. 2062।

मत्स्यपुराण : मेहरचन्द्र लक्ष्मन दास, देलही, प्रथम–संस्करण, 1984।

मदालसाचम्पू	:	सत्यम पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 2005।
मनुस्मृति	:	संस्कृति संस्थान, बरेली, उ0 प्र0 पञ्चम-संस्करण, 2000।
महाभारत	:	परिमल पब्लिकेशन, देलही, प्रथम-संस्करण, 2001।
महावीरचरित	:	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, संस्करण- 1926।
मालतीमाधव	:	चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, तृतीय-संस्करण, 1998।
मुद्राराक्षस	:	चौखम्बा संस्कृत, वाराणसी, चतुर्थ-संस्करण, 1973।
मेघदूत	:	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ-संस्करण, 2005।
मृच्छकटिक	:	साहित्य भण्डार, मेरठ, संस्करण-11, 2001।
यशस्तिलकचम्पू	:	महावीर जैन ग्रन्थ माला, वाराणसी, संस्करण- 1960।
यजुर्वेद	:	मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, वाराणसी, संस्करण-1971।
	:	युग निर्माण योजना, मथुरा, उ0 प्र0, संस्करण-2008।
रघुवंश	:	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पञ्चम-संस्करण, 1985।
रत्नावली	:	साहित्य भण्डार, मेरठ, संस्करण-1986।
रक्षतगङ्गा	:	श्री माता पब्लिकेशन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1999।
रामायण	:	गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण-32, सं. 2064।
वायुपुराण	:	गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण- सं. 2065।
वासवदत्ता	:	चौखम्बा अकादमी, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 2006।
विक्रमोर्वशीय	:	कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1984।
विक्रमाङ्कदेवचरित	:	हिन्दू विश्वविद्यालय संस्कृत साहित्यसु संधान समिति, संस्करण- 1958।
वाराहपुराण	:	चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय- संस्करण-1982।
विष्णुपुराण	:	गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण-31, सं. 2063।
वेणीसंहार	:	साहित्य भण्डार, मेरठ, नवम्-संस्करण, 2003।
बृहदारण्यकोपनिषद्	:	मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, पटना, वाराणसी,

संस्करण- सं. 2025।

शतपथ ब्राह्मण : चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, संस्करण- 1998।

शिवपुराण : नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, संस्करण- 1986।

शिशुपालवध : चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1998।

शिवराजविजय : व्यास प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1993।

स्कन्दपुराण : आनन्द आश्रम मृदुणालय, पूना, प्रथम-संस्करण, 1924।

स्वप्नवासवदत्त : कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, संस्करण-1955।

सामवेद : मुंशी राम मोती पब्लिशर्स प्रा0 लि0, दिल्ली, संस्करण-1983।

: युग निर्माण योजना, मथुरा, उ0 प्र0, संस्करण-2008।

सुलोचनाचम्पू : मिथिला इन्स्ट्यूट आफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज एण्ड रिसर्च इन संस्कृत, महेश नगर, दरभंगा, प्रथम-संस्करण, 1977।

सौन्दरानन्द : चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1989।

सौन्दर्यबल्ली : भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 1995।

हर्षचरितम् : कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, संस्करण-1994।

: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1992

हितोपदेश : साहित्य भण्डार, मेरठ, तृतीय-संस्करण, 2000।

हिमाद्रिपुत्राभिन्दनकाव्य : (श्रीकृष्ण सेमवाल) श्री हेमवती नन्दन बहुगणा जन्मदिवस समारोह समिति नई दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 1980।

श्रीमद्भगवद्गीता : गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण,-80, सं. 2061।

श्रीसूर्यशार्दूल- विक्रीडितकाव्यम् : कवि गङ्गेश भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, जुलाई 1990।

सहायक ग्रन्थ सूची

अग्रवाल, प्रमोद, पर्यावरण एवं नदी प्रदूषण, आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 1993।

अग्रवाल, वासुदेव शरण, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, तृतीय-संस्करण, 2000।

अग्रवाल, वासुदेव शरण, कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, तृतीय-संस्करण, 1998।

अग्रवाल, वासुदेव शरण, प्राचीन भारतीय लोक धर्म, ज्ञानोदय ट्रस्ट, अहमदाबाद प्रथम-संस्करण, 1964।

उपाध्याय, आचार्य बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शरदा निकेतन, वाराणसी, दशम्-संस्करण, 1992।

संस्कृत सुकवि समीक्षा, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, तृतीय-संस्करण, 1987।

वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी पंचम-संस्करण, 2006।

उपाध्याय, रामजी, आर्ष सुभाषिता-साहस्री, भारतीय संस्कृति संस्थानम् वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 2003।

उपनियाल, मायाराम, संस्कृत साहित्य में पर्यावरण एवं कालिदास की वनस्पतियाँ, श्री शर्मा आयुर्वेद मन्दिर, दतिया, मध्य प्रदेश, प्रथम-संस्करण, 1994।

कुमार, सञ्जय, दण्डिकालीन जन-जीवन, सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 2009।

गोयल, एम0 के, अपना पर्यावरण, विनोद पुस्तक मन्दिर, जयपुर, प्रथम -संस्करण, 1995

चौबे, ब्रज विहारी, वेद और लोक जीवन, संज्ञान वैदिक अध्ययन एवं शोध केन्द्र, होशियारपुर, प्रथम-संस्करण, 2006।

तिवारी, काशीनाथ, आचार्य दण्डी की साहित्य साधना, नाग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 1998।

तिवारी, डी0 एन0, वनों का मनमोहक संसार, इन्टरनेशनल बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, देहरादून, प्रथम-संस्करण, 1991।

वन, आदिवासी एवं पर्यावरण, शांतिप्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1996।

द्विवेदी, कपिलदेव, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, रामनारायण विजय कुमार प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2004।

नेगी, सुरेन्द्र सिंह, महाभारत में समाज संस्कृति एवं दर्शन, के0 एल0 पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम-संस्करण 1997।

नौटियाल, शिवानन्द, गढ़वाल की वन सम्पदा और पर्यावरण, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम-संस्करण, 1991।

पटवा सुभू, पर्यावरण की संस्कृति, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, संस्करण-1993।

पगारे, प्रमोद, पर्यावरण प्रबन्धन एवं संविकास, ए वी डी पाब्लिशर्स, जयपुर, प्रथम-संस्करण, 2007।

पाला, शशि, भट्टिकाव्य एवं पाणिनीय व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 1994।

बहुगुणा, सुन्दर लाल, धरती की पुकार, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम-संस्करण, नई दिल्ली 1996।

पर्यावरण और विकास, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 1997।

व्यास हरिश्चन्द्र, पर्यावरण शिक्षा, विद्याबिहार, नई दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 1992।

मलिक, जसवीर सिंह, पर्यावरण शिक्षा, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 2004।

शर्मा विष्णु दत्त, प्रदूषण रोधी वृक्ष, किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 1993।

शर्मा अतुल, पर्यावरण एवं संरक्षण समस्या एवं समाधान, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 1991।

सक्सेना, वी. एस, पर्यावरण परीक्षण एवं वानिकी, राजस्थान हिन्दीग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम-संस्करण, 2000।

सक्सेना, हरिमोहन, पर्यावरण एवं प्रदूषण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, प्रथम-संस्करण, 1994।

सिंह, जगदीश, पर्यावरण विकास, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, चतुर्थ-संस्करण, 2005।

वातारण नियोजन एवं विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर, द्वितीय-संस्करण, 1991।

सिंह, मान, सुबन्धु एण्ड दण्डिन्, मेहरचन्द लच्छनदास, दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 1971।

त्रिपाठी, मधुसूदन, जल प्रदूषण समस्या और समाधान ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम-संस्करण, 2006।

त्रिपाठी एवं द्विवेदी, अभिनन्द भारती एवं संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण चेतना, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर,उ0 प्र0, प्रथम-संस्करण, 2004।

त्रिपाठी, उपेन्द्र कुमार, यजुर्वेद में पर्यावरण, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, प्रथम-संस्करण, 2008।

ISBN : 978-81-909037-8-3